कहानी-कला और प्रेमचन्द

लेखक

श्रीपति शर्म्मा एम० ए० (अंग्रेजी और हिन्दी)
बी० टी०, साहित्य-रत्न,
प्राध्यापक, सेकसरिया कालेज, बस्ती।

प्रकाशक—
विद्या-मन्दिर,
ब्रह्मनाल, काशी।

प्रकाशक
विद्या-मंदिर
ब्रह्मनाल, बनारस ।

मुद्रक
सरला प्रेस
बनारस ।

श्री पुरषोत्तम दास टण्डन

(अध्यक्ष युक्तप्रांत असेम्बली)

युक्तप्रांतीय व्यवस्थापिका सभा के यशस्वी अध्यक्ष

श्री पुरुषोत्तमदास जी टंडन

को, जिनकी अनन्य हिन्दी-निष्ठा

पर सारा देश मुग्ध है, और

जिन्होने मेरी श्रद्धांजलि

सहर्ष स्वीकार करके

मुझे प्रोत्साहित

किया है—

सादर समर्पित

काशिका

साहित्य के निर्माण में प्रधान रूप से जिन तत्त्वों की योजना की जाती है वे हैं—भाव, विचार और वस्तु। साहित्य की विभिन्न शाखाओं में इन्ही मे से किसी एक तत्त्व की प्रमुखता हो जाया करती है, शेष तो गौण रहा करते हैं। भावमय तत्त्व के अगी होने से कविता का प्रणयन होता है, विचारात्मक तत्त्व के अंगी होने से निबंध का और वस्तु या कथात्मक तत्त्व के अंगी होने से कहानी का। नाटक मे यद्यपि कथा और भाव की प्रधानता का सांकर्य रहता है पर भारतीय दृष्टि से उसमें अगी भाव या रस ही होता है। इसी से यहाँ उसकी गणना रसप्रधान साहित्य मे ही की गई है। वह श्रुत या श्रव्य काव्य न रहकर दृष्ट या दृश्य काव्य हो जाता है, पर रहता है काव्य या कविता ही। वस्तु की योजना उसमें अपेक्षाकृत गौण ही रहती है। रूपककार केवल घटनावैचित्र्य पर दृष्टि नही रखता और पाठक या दर्शक की दृष्टि भी नाटक के संबध मे केवल घटनावैचित्र्य पर नहीं रहती। भारतीय मीमासा के अनुसार 'वस्तु, नेता, रसस्तेषा भेदकः' अवश्य है पर उसमे तत्त्व का प्रकर्ष उत्तरोत्तर है अर्थात् वस्तु की अपेक्षा नेता और नेता की अपेक्षा रस प्रकृष्ट है। इसीसे 'काव्येषु नाटकं रम्यम्' की घोषणा की गई। 'वस्तु' उसका कथात्मक तत्त्व है, 'नेता' मे विचारात्मक तत्त्व की

योजना की जाती थी और 'रस' तो भावात्मक तत्त्व है ही। पर पश्चिम में जहाँ तक कथा-कहानी का संबध है क्रम पलट गया है। नाटक वहाँ अब कथात्मक साहित्य का ही अंग माना जाता है। यहाँ तक कि उसमे से कविता एकदम निकाल बाहर की गई है। भारत मे या हिंदी में संप्रति जो नाटक लिखे जाते हैं उनमे कविता अल्प परिमाण में रहती है। जो रहती भी है वह ऊपर से चिपकाई हुई। अधिकतर नाटको मे तो वह रहती ही नहीं। पश्चिमी नाटक 'वस्तु' और 'नेता' या 'चरित्र' अथवा 'चारित्र्य' पर ही विशेष ध्यान देते हैं। इसी से वहाँ के समीक्षक नाटक, उपन्यास और छोटी कहानी का विचार एक साथ करते हैं। उन्हें साहित्य की घटनात्मक रचना मानकर ही चलते है।

कहानी और उपन्यास में तत्त्वो की दृष्टि से कोई भेद नहीं हैं। भेद है घटनाओ की व्यष्टि और समष्टि की योजना की दृष्टि से। कहानीकी विस्तार-सीमा छोटी होती है, चाहे उसका कितना ही फैलाव क्यो न किया जाय। उपन्यास की विस्तार-सीमा बड़ी ही होती है चाहे उसका कितना ही सकोच क्यों न किया जाय। कहानी जीवन का एक चित्र रखती है—निरपेक्ष, स्वच्छंद। उपन्यास जीवन के एकाधिक चित्रो का योग संघटित करता है—सापेक्ष, संबद्ध। घटना-वैचित्र्य या घटनाचक्र के प्रवर्तन की ओर चित्त को आकृष्ट करने की विशेषता दोनो ही मे होती है। कहानी या उपन्यास की चाहे पुरानी कृतियाँ हो चाहे अधुनिक सबमें घटनाचक्र की ओर आकर्षण अवश्य रहता हैं। तिलस्मी, ऐयारी, जासूसी कथा कहानियो से लेकर आधुनिकतम मनोवैज्ञानिक कहानियो तक में घटनागत आकर्षण की प्रवृत्ति बनी हुई है और बनी रहेगी। इधर कुछ लोग 'गद्यकाव्य' नामक नूतन साहित्य शाखा को कहानी इसलिए मानने लगे है कि उसमे कही कहीं कथा का घटना का सहारा विशेष रूप से लिया जाने लगा है। पर 'गद्यकाव्य' या

वास्तविक क्षेत्र विचारात्मक ही होता है। उसमें 'विचार' अगी होता है;-भाव और कथा अग मात्र। अंग के विशेष प्रदर्शन के कारण कभी उसकी गणना कविता में की जाती है और कभी कहानी में। उसमें भावात्मक तत्त्व का अंश अधिक दिखाई देने के कारण बहुधा लोग उसे 'गद्यगीत' या 'गद्यकाव्य' कहा करते हैं। पर उसे कहना चाहिए काव्यात्मक निबंध या यथास्थान कथात्मक निबंध ही।

निबध और आलोचना का क्षेत्र एक ही है। दोनो मे विचारात्मक तत्त्व की ही प्रधानता रहती है। आलोचना को 'निबंध', या विस्तृत होनेपर 'प्रबध' कहते भी हे। पर विचार करने पर दोनों में कुछ अतर भी दिखाई देता है। निबंध मे लेखक जिस विषय का विवेचन करता है उसकी सामग्री का आकलन भी उसे ही करना पड़ता है। आलोचना में सामग्री दूसरे या दूसरो के द्वारा आकलित रहती है उस आकलन को देखना और भली भाँति देख लेना ही उसका काम रहता है इसी से ऐसे निबधों का नाम 'आ + लोचना' या 'सम् + ईक्षा' होता है। निबधो को जो कुछ लोग ज्ञातृपक्ष-प्रधान मानते हैं उसका कारण यही है पर निबध चाहे जैसा हो उसमें ज्ञेयपक्ष या विषय ध्यान मे रहता अवश्य है। विचार-सूत्र का छोर विषय से ही बँधा होता है, विवेचन के वृत्त का केन्द्र विषय ही रहता है। जो केवल आत्मवैचित्र्य का प्रदर्शन करने को निबंध लिखा करते हैं वे 'निबध' न लिखकर 'निर्बंध' लिखते हे। जो विषय के विवेचन या निरूपण से बँधना ही नही चाहता वह निबध क्या लिखेगा? वह 'वादविवाद' से घबरा कर 'बकवाद' मे लीन होना चाहता है। वह अपनी ही कहना चाहता है, किसी को देखना नही। वह तो आँखें मूँदकर चलता है। व्यक्तित्व के प्राधान्य की यह हवा आलोचकों को भी लग है और वहाँ भी समीक्षा प्रभावात्मक रूप धारण कर रही है। वह 'आली

चना' नही 'आत्मलोचना' अवश्य है। साहित्य में जो अपने को ही देखना और दिखाना चाहते हैं, जो आत्मदर्शन और आत्मप्रदर्शन में ही लगे रहते हैं वे साहित्य का प्रयोजन नही समझते, उसका अर्थ नही जानते। साहित्य मे 'अहम्' या 'व्यक्तित्व' के शमन या दमन का अभ्यास आवश्यक है। साहित्य भी योग है इसके भी यम-नियम हैं। इसके 'सह-योग' की साधना ही सिद्धि दे सकती है। अस्तु।

वस्तुतः साहित्य की तीन ही प्रधान शाखाएँ दिखाई देती हैं—कविता, निबंध और कहानी। कविता भाव-प्रधान होती है। वह रसात्मक स्थिति निष्पन्न करती है। निबंध विचार-प्रधान होता है। वह चिंतनात्मक वृत्ति उद्बुद्ध करता है कहानी घटनाचक्र-प्रधान होती है। वह कुतूहल की प्रवृत्ति जगाती है। एक का व्यंग्य है रिरंसा, दूसरे का लक्ष्य है मीमासा और तीसरे का वाच्य है जिज्ञासा। मनोवैज्ञानिको ने काव्य-वृत्ति को क्रीड़ा-वृत्ति (प्ले इंपल्स) कहा है। क्योंकि कविता मे रमने की वृत्ति होती हैं, रमाने की प्रवृत्ति आती है। भारतीयो ने भी कविता को 'रसमय' या 'रमणीय' कहा है। कवि इसमें डूबकर काव्य रचना-काल में समाधिस्थ हो जाता है और दूसरे को रसास्वाद-काल मे समाधिस्थ करना चाहता है। इसी से कविता मे व्यवसायात्मक बुद्धिप्रधान-तत्त्वो का बहुत विधान निषिद्ध माना जाता है—'व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते।' उसमे ज्ञानात्मक अवयव का प्राधान्य न होना चाहिए, क्योकि वह मूलत भावात्मक या भोगप्रधान है, उसमें चर्वणा और आस्वाद का आनद है। उपदेशात्मक (डाइडेक्टिक) अंशों की योजना की चर्चा से कवि और भावक जो भड़का करते हैं वह इसी आस्वादहानि के कारण। इससे स्पष्ट है कि कविता का प्रभाव हमारे मन या हृदय पर पड़ता है। वह मन से उद्भूत होती है और उसका लक्ष्य भी मन ही होता है।

किंतु निबंध व्यवसायात्मक होता है उसमे ज्ञानात्मक अवयव या विचार का प्राधान्य होता है। वह हमारी बुद्धि को उत्तेजित करता है। वाङ्मय के जो दो भेद किए गए हैं 'काव्य' और 'शास्त्र' उनमें से निबध वस्तुतः वाङ्मय का शास्त्रपक्ष है। वह व्यवस्था या शासन से संबद्ध है। कविता में अव्यवस्था रह सकती है, पर निबध मे अव्यवस्था उसकी कमर तोड़ देगी। कविता रमणी है तो निबध राजा। कविता सत्त्वोद्रेक से, सात्त्विक भाव से संपृक्त है तो निबध नीति-नियम से राजस गुण से निबद्ध। जिस साहित्य में कविता तो हो, पर निबध या शास्त्र न हो वहाँ अराजकता रहती है। 'निरकुशा' कवयः' के लिए अकुश चाहिए अवश्य, वे उसे कभी कभी न मानें यह दूसरी बात है। हिंदी के वर्तमान युग मे प्रगतिवाद के नाम पर यही हो रहा है। न कोई शास्त्र बनता है न व्यवस्था होती है। राजनीति-प्रधान युग में जैसी घोर अराजकता साहित्य-क्षेत्र में दिखाई देती है, अन्यत्र नही। फल यह है कि साहित्यिक राजनीतिज्ञों के पीछे लगा घूमता है। जिसका अपना शास्त्र न होगा, अपनी शासन-व्यवस्था को जो सुदृढ न रखेगा वह शासित होगा। आज का कवि शासित है, शास्ता कोई दूसरा है। कभी वह अर्थ से शासित है, कभी राज से और कभी काम से। उसका शासन किस या किन नीतियों पर है वह स्वतः विचार ले। 'शास्त्रेषु भ्रष्टा कवयो भवन्ति' नीति वर्तमान हिंदी में स्पष्ट दिखाई दे रही है। 'पद्यकवि' या 'गद्यकवि' अथवा लेखक बहुत हैं, विचारक कम दिखाई देते हैं—लेख बहुत से दिखाई पड़ते हैं उन निबंधो के दर्शन दुर्लभ हैं जिनका प्रयोजन बोध है। निबंध बुद्धि का व्यवसाय है। वह बुद्धिजनित होता है और बुद्धि को ही सवर्धित करता है।

कहानीका लक्ष्य घटनाचक्र होता है, उसमें आकर्षण का विधान आवश्यक होता है। फलतःकहानी मे पाठक की कुतूहलवृत्ति जागरित की जाती है। इसीसे

अँगरेजी के समीक्षक कहानी का प्रधान तत्त्व 'कुतूहल' (एलीमेंट ऑफ सस्पेंस) को ही मानते हैं। यह ठीक भी है। किसी कहानी के पढने में 'आगे क्या हुआ या होने वाला है' की जिज्ञासा के रूप मे कुतूहल बराबर जगा रहता है। कविता की भाँति किसी विशेष भाव मे रमाए रखना उसका प्रयोजन नही, किसी निबंध की भाँति, नूतन ज्ञानोपलब्धि उसका फल नही। उसका मुख्य उद्देश्य होता है 'रंजन'। इस रंजन के लिए वह कुतूहल का सहारा लेती है। वह अनुसंधानात्मक चित्तवृत्ति की परितुष्टि करती है। कविता के द्वारा भी 'रंजन' होता है, पर 'रंजन' उसका गौण लक्ष्य होता है। 'रमण' के अनंतर रंजन उसमें भी होता है, किंतु वह द्वितीय-स्थानीय है। कहानी में 'रंजन' प्रथमस्थानीय है। 'चित्त-रंजन' की विशेषता कहानी में सबसे अधिक होती है। कविता में रंजन की वृत्ति जब बढती है तो वह अपने ऊँचे पद से गिर जाती है। यमक, अनुप्रास, श्लेष आदि अलंकारो का अधिक लदाव कविता में रंजन की प्रधानता व्यक्त करता है और अलंकार मात्र, वाच्य-प्रधान काव्य को अवर (निकृष्ट) काव्य प्राचीन आचार्यों ने भी माना है। स्मरण रखना चाहिए कि कविता और निबंध दोनो के लिए अवकाश अधिक चाहिए। उनमें इससे स्थायीत्व भी अधिक होता है। कहानी के लिए उतने अधिक अवकाश की आवश्यकता नही होती—न लेखक के लिए न पाठक के लिए। कविता और निबंध दोनो के लिए कोलाहल और हलचल से कुछ दूर रहने की अपेक्षा होती है—'तुमुल कोलाहल कलह मे मै हृदय की बात रे मन।'—'प्रसाद'।

कहानी कोलाहल और हलचल के बीच भी चल सकती है। श्रीप्रेमचंद काशी मे गोरखनाथ के टीले के आगे वाले चबूतरे पर टीन की छाया के नीचे कुर्सी पर बैठे, सड़क की ओर मुँह किए बराबर कहानी लिखा

करते थे। रेल की यात्रा करनेवाले अधिकतर कहानियो के ही संग्रह पढा करते हैं। कहानी मे गाभीर्य होता ही नहीं यह कहना प्रयोजन नही। केवल बतलाना यह है कि उसको गाभीर्य की सदा आवश्यकता नहीं पड़ती इसी प्रकार यह कहने मे कोई बाधा नही कि तारतम्य के विचार से साहित्य मे कथा-कहानी का स्थान तीसरा है।

संप्रति जीवन में संकुलता और सघर्ष की वृद्धि हो जाने के कारण 'अवकाश' की प्रायः कमी होती जा रही है। फलस्वरूप कविता का मानदंड गिरता जा रहा है, निबंध की महिमा घटती जा रही है। पर कहानियो को पख लग गए हैं। प्रत्येक पत्र मे कहानी अवश्य रहती है, कविता और निबंध चाहे न हो। कहानियों के स्वतंत्र पत्र एक-दो नही दस-बीस हिंदी मे ही निकलने लगे हैं। केवल कविता का एक भी पत्र कही से निकलता है ? केवल निबंध (लेख नही) के कितने स्वतत्र पत्र निकलते हैं ? एक भी नही। यदि साहित्य की किसी विशेष शासन के अत्यधिक विस्तार के कारण कोई कहना चाहे तो आज के युग को 'कहानी का युग' बेखटके कह सकता है। कहानी ने कविता को दबाया निबन्धों को भगाया, नाटकों को नवाया और उपन्यासो को गाया। उपन्यास डर से ही तो सिकुड़कर छोटे होते जा रहे हैं। बड़े बड़े नाटको के बदले 'एकाकी लिखने का जो अधिक चलन हो रहा है वह इसी से कि कहानी सुनते सुनते और सुनाते सुनाते पाठक और लेखक ऊब गए हैं। पर पाठक सुनना कहानी ही चाहता है और लेखक सुनाना भी कहानी ही। इसीसे आजकल के 'एकाकी' नाटक न होकर प्रायः कहानी ही होते हैं। उनमे दिए जानेवाले 'रगनिर्देश' (स्टेज डिरेक्शन) से यह बात स्पष्ट हैं। यह 'रगनिर्देश' किसी किसी एकाकी मे उसके पूरे आकार के कभी कभी आधे से भी अधिक हो जाता है। कार्यव्यापार

(ऐक्शन) का अधिकतर कृतियोंमें अभाव होता है, खेलकर दिखाए जाने पर बहुतो की प्रशंसा नहीं होती। इस प्रकार न उनमें नाटकीयता होती है और न अभिनेयता ही। केवल संवाद में लिख देने से कोई रचना नाटक नहीं कही जा सकती। आद्यत सवाद में लिखी कहानी भी हो सकती है। प्रेमचंद ने ऐसी कहानियाँ लिखी हैं, उन्हे किसी ने कभी नाटक नही कहा।

मनुष्य मे कहानी कहने सुनने की वृत्ति बहुत पुरानी है। वाङ्मय के रूप मे कविता भले ही पहले दिखाई दे और कहानी पीछे, भले ही। आदि-कवि परंपरा मे पहले हों पर अपने उद्भवके विचार से कहानी कविता से पहले हुई होगी। पुराणो मे जिन कथा कहानियोंका संग्रह हो गया है वे पुराणकाल के बहुत पहले की हैं। आदि कवि ने अपने समय के महान् चरितनायक मर्यादापुरुषोत्तम का इतिवृत्त काव्यबद्ध किया, पर व्यास के पुराणो में सारी कथाएँ द्वापर की ही नही और पहले की भी हैं। इतने पहले की भी हैं कि पुराणा मे उनका रूप बहुत विकृत हो गया है। 'पुराण' पुराना इतिवृत्त है, 'रामायण' तात्कालिक जीवनवृत्त। पुराण मे कथात्मक तत्त्व, वस्तुकथन, अधिक है—पद्यबद्ध होने पर भी, रामायणमे वस्तु-कथन लक्ष्य नही, क्रौंचबध के कारण हुए शोक के श्लोकबद्ध होने पर भी यहाँ शोक ही (भाव ही) श्लोक हो गया है, वहाँ वस्तु ही पद्य हो गई है। कविता मे कहानी की अपेक्षा चुस्ती होती हैं, निबंध मे यह चुस्ती (कसावट) सबसे अधिक अपेक्षित होती है, वह समास-वाङ्मय है, कहानी उसकी अपेक्षा व्यास वाङ्मय। व्यास ने पुराण अठारह लिख डाले और वाल्मीकि ने रामायण एक ही, मम्मट ने काव्यप्रकाश एक ही जनता में चलनेवाली अनुश्रुति या आनुश्रविक अब भी 'बुढिया पुरान' ही है। वस्तुतः वह अपने मूल रूप मे इतिहास ही है, ऐतिह्य ही है। पर स्मृति

से दूर हो जाने के कारण उसका कथा-कहानी का सा रूप हो गया है।

कथा का पुराना रूप कल्पित ही होता था, यथार्थ, ऐतिहासिक या पूर्वघटित नही। आधुनिक कहानियो मे यद्यपि कुछ ऐतिहासिक इतिवृत्त वाली भी होती हैं, तथापि उनका वास्तविक रूप कल्पित ही होता है। इसीसे बँगला मे कहानी का नाम 'गल्प' (कल्प = कल्पित) है। पुरानी कथा कादंबरी भी कल्पित है, सुबंधु की वासवदत्ता भी कल्पित है। इस वासवदत्ता का उदयन की वासवदत्ता से कोई संबंध नही। जीवन के यथार्थ से यदि कहानी का अधिक पार्थक्य हो जाय तो वह 'गल्प' से निरी 'गप्प' रह जाती है। आधुनिक कहानियों के आरंभ के समय ऐसा ही हुआ। तिलस्मी और ऐयारी कहानियों मे मनमानी घटनाओ का ऐसा योग और सयोग घटित किया जाने लगा कि उनकी यथार्थता में संदेह हुआ। जासूसी कहानियो में अयथार्थता सँभाली गई, वे अयथार्थ होकर भी तर्कपुष्ट भूमि पर स्थित दिखाई पड़ीं। 'ऐसा हो सकता है' यह मानने के लिए पाठक विवश हो गया। पर उसकी अयथार्थता की शंका से वह अपने को मुक्त न कर सका। अब साहित्यिक कहानियों की सर्जना 'यथार्थ' की जॉच के साथ की जाती है। 'यथार्थ' और 'आदर्श' का जो झगड़ा कथा-कहानी के क्षेत्र मे उठ खड़ा हुआ है वह कहानी को कविता से पृथक् करने के ही लिए नहीं स्वगत संशोधन के लिए भी। पर साहित्य में आने पर कहानी घटित घटना तो होती नही, संभावित घटना ही होती है इससे प्रकृत (ऐक्चुअल) और यथार्थ (रियल) मे भेद करके काम चलाया जा रहा है। कथागत घटना का प्रकृत होना आवश्यक नहीं, पर उसे यथार्थ अवश्य होना चाहिए। वह कृत्रिम न जान पड़े, उसका प्रकृत रूप सभाव्य हो।

कथा-कहानी का वाङ्मय जब से अधिक बनने लगा तबसे यथार्थ

का डंका भी तरह तरह से पीटा जाने लगा। यथार्थ के नाम पर कथा-कहानी कितनी आगे बढ़ गई है इसका विवेचन यहाँ प्रसग-प्राप्त है। पुराने समय मे कथा-कहानी के नाम पर होने वाली रचना में नीति, उपदेश, आदर्शवादिता आदि का इतना अतिरेक हुआ करता था कि कृत्रिमता की हद हो गई थी। जिस जीवन की छाया हमें कृत्रिम जान पड़ने लगेगी उसमें विश्राति मिलने की शंका भी होगी। मृग-मरीचिका से जैसे प्यास नही बुझनी, जीवन की छाया-प्रच्छन्नता से वैसे ही प्यास भी नही मिटती। इसलिए सत्पक्ष के प्रतिपादन का अतिरेक अरुचिकर और असह्य हो चला था। जीवन द्वंद्वात्मक है। उसमें छाँटा हुआ कोई पक्ष नही होता; न सत् न असत्। जीवन में जहाँ सत् है वही असत् भी, जहाँ असत् है वहां सत् भी। कही पहला प्रधान और उभड़ा हुआ होता है और कही दूसरा। शाकर अद्वैत के अनुसार जो जगत् या सृष्टि 'सद्सद् विलक्षण' कही जाती है वह पारमार्थिक है। इसलिए केवल सत् को ही उसके प्रतिबिम्ब के रूप मे साहित्य में लाना ठीक नहीं, असत् भी उसके साथ होना चाहिए। राम को परात्पर ब्रह्म और मर्यादापुरुषोत्तम कहने पर भी उनकी नरलीला में भक्तानुकूल्य का प्रतिपादन या प्रदर्शन ही साहित्य को ग्राह्य हो सकता है। इसी से स्वतः मर्यादा का, आदर्श का सर्वतोऽधिक विचार रखनेवाले तुलसीदासजी को भी डिंडिभ-घोष से कहना पड़ा कि

> जेहि अघ बधेउ ब्याध जिमि बाली।
> पुनि सुकंठ सोइ कीन्हि कुचाली ॥
> सोइ करतूति विभीषन केरी।
> सपनेउ सो न राम हिय हेरी ॥

पर इस सद्सद् के विलक्षण द्वंद्व का विचार न कवियो ने अधिक रखा, न कथक्कडों ने। फलतः सत् के अतिरेक के विरुद्ध असत् का प्रति-

वतन होना था और यथार्थ या 'सत्' के नाम पर ही वह हुआ। सद्गुण-सम्पन्न व्यक्तियो का असत् पक्ष और दुर्वृत्तो का सत् पक्ष प्रतिपादित करने की ऐसी धूम मची कि सद्वृत्तो को दुर्वृत्त और दुर्वृत्तों को सद्वृत्त का रूप दिया जाने लगा। समाज का पवित्र पक्ष दब गया, कलुषित पक्ष उभर आया। यदि सत्समर्थन का कभी अतिरेक हुआ था तो असदनुमोदन की भी अति होने लगी। साहित्य स्वतः जीवन को वैसा ही मानकर या लेकर चलता है जैसा वह है, पर असत् मे सत् की खोज और संचय का इतना आग्रह बढ़ा कि यहाँ भी यथावत् जीवन न आकर उसका कृत्रिम रूप ही सामने आने लगा। स्वच्छंदता के नाम पर बहुत से स्वच्छंदकृती इसी की ओट मे स्वस्थ और परस्थ समाजदूषित आचार का समर्थन करने लगे। मर्यादा का अतिक्रमण होने लगा। 'कथासरित्' मे यथार्थवाद की यह बाढ ऐसी आई कि साहित्य-सागर मे भी उद्वेलन होने लगा, यदि रोकथाम न होती तो होती ओघ की सी स्थिति—फिर प्रलय। पर कुछ मर्यादा का विचार रखने वालों ने संयम और विवेक से काम लिया। हिंदी मे ऐसे सयमी और मर्यादित कहानीकारो के अग्रणी और सक्षम प्रातिभ थे स्वर्गीय मुशी प्रेमचंद। हिंदी-साहित्य के काव्य-क्षेत्र मे मर्यादा के विचार से जो स्थान महात्मा तुलसीदास का है वही कथा-कहानी के क्षेत्र में मनीषी प्रेमचद का। यथार्थवाद के नाम पर जब जीवन का काजुप्य ही सामने लाया जा रहा हो और स्वच्छदतावाद के नाम पर जब काम-वासना की परितुष्टि का साधन ही साहित्य मे एकत्र होने लगा हो तब जीवन के उभयात्मक स्वरूप की दृष्टि से सदसद् का विचार रखकर निर्माण करना और प्रेम के क्षेत्र में केवल शील प्रणय का ग्रहण करना बहुत बड़ी महत्ता है।

बूढ़े भारत ने बहुत दिनों के अनुभव के अनंतर 'जीवन में समन्वय' की ही नीति को जीवन का चरम लक्ष्य और मानवता के विकास का मर्म

माना है। वह जीवन मे अतिवादी कभी नहीं रहा। जब जब किसी पक्ष का अतिवाद हुआ तब तब उसकी परिशाति का उपाय उसने निकाला और अंत में 'साहित्य' के नाम पर उसने 'समन्वयवाद' को जीवन का शाश्वत और स्वतंत्र दर्शन स्वीकार कर लिया। राम, कृष्ण, बुद्ध सभी समन्वयवादी थे। जो राम के शंबूक-वध की ओर देखते हैं उन्हे रावण-वध को पहले देखना चाहिए। जो कृष्ण के राग-रंग को देखना नहीं चाहते उन्हें महाभारत तो देखना ही पड़ेगा। जो बुद्धि की तपश्चर्या से घबराते हे उन्हे सुजाता की मधुर खीर से स्वस्थ होना चाहिए। अतिवादियो को राम के मर्यादावाद, कृष्ण के लीला-रहस्य और बुद्ध की मध्यमा प्रतिपदा की समन्वय पद्धति समझने का अभ्यास डालना चाहिए। भारतीयता भेद मे अभेद का समन्वय लेकर चली है, अभी अन्य देशो का शैशव अभेद में भेद को देख रहा है, समझ रहा है, संकेतग्रह कर रहा है। यहाँ जाति मे व्यक्ति के, सामान्य मे विशेष के, साधारण में असाधारण के, विश्वात्मा मे आत्मा के, लोक मे अपनत्व के विसर्जन का सिद्धात जीवन मे बहुत विचार और चितन के अनंतर स्वीकृत हुआ है। जो इसे नहीं समझते, जो भारतीयता और योरपीयता, रूसीयता, अमेरिकीयता आदि को समान दृष्टि से देखकर भारतीयता को योरपीयता आदि का विरोधी कहकर भारतीयता की पुकार करनेवालो को संकुचित मनोवृत्ति का बतलाते हैं, उन्हें अपनी विचारधारा को, अपने मानस को निर्मल करने का प्रयास करना चाहिए। भारतीयता और विश्वीयता में कोई विरोध नहीं, योरोपीयता आदि से उसके विरोध का कारण तत्तद्देशीय मनोवृत्ति का अविश्वीय होना है, अभारतीय होना नहीं। विश्वोन्मुख भावना चाहे जिस देश की हो भारत उसका अभिनंदन करता आया है, करता है और करता रहेगा। यदि कोई यह कहे कि किसी देश की राजनीतिक भावना का

आरोप वहाँ की साहित्यिक मनोवृत्ति पर मत कीजिए तो उत्तर यह होगा कि यदि वहाँ का साहित्य वहाँ की राजनीति के शासन में न हो तब न ! पर विचार लीजिए, देख लोजिए किस देश का साहित्य वहाँ की शुद्ध स्वदेश, शुद्ध स्वजाति के स्वार्थ से एकदम मुक्त है । जैसे वहाँ की राज-नीति अभेद में भेद की स्थापना करनेवाली है, स्वदेशी स्वार्थ को विश्व के ऊपर लादनेवाली है, अपने व्यापार के लिए ही नूतन विद्याओं का विस्तार करनेवाली है वैसे ही साहित्य मे भी जाति में व्यक्ति-वैचित्र्य, समाज में संघर्ष-क्राति, हलकी पत्र-कला आदि को प्रोत्साहित करनेवाली वृत्ति दिखाई देती है । पर भारत की राजनीति समन्वयवादिनी, भारत का साहित्य समन्वयवादी ।

भारत का साहित्य यहाँ की राजनीति का कभी बँधुआ नहीं रहा है । न प्राचीन युग में, न वर्तमान युग मे । साहित्य अपनी दृष्टि से समाज का निरीक्षण करके स्वतः सदसद् का विवेक करके समर्थन-विरोध करता आया है । जो भारतीय और मुख्यत हिंदी-साहित्य को सांप्रदायिक कहकर अपना उल्लू सीधा करना चाहते हैं उनको अपनी साप्रदायिकता की ओर पहले देख लेना चाहिए और हिंदी-साहित्य के सच्चे सपूतों को ऐसों की राजनीतिक चालों से सावधान हो जाना चाहिए । न प्रेमचंद कांग्रेस के नेता थे, न प्रसाद और न महावीरप्रसादजी द्विवेदी, न रामचंद्र शुक्ल, न मैथिली-शरण गुप्त हैं, न सुमित्रानंदन पंत, न निराला, न महादेवी । पर कौन कह सकता है कि राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक उत्थान में इन्होंने अपने या साहित्य के हृदयवाले आधे भाग से कम योग दिया । जो नित्य साहित्यिकों को राजनीतिज्ञों का अनुसरण करने की सलाह दिया करते हैं, सभा-संमेलनों मे जिनके प्रवचन इधर इसी विषय पर बहुत होते रहते हैं तथा जो नए-नए संघों की स्थापना करके साहित्य को सांप्रदायिक बनाना

चाहते हैं, जो दूसरे देशो की नकल भारत में भी करना कराना चाहते हैं उन्हे 'साहित्य' शब्द के अर्थ का चिंतन करने का अभ्यास डालना चाहिए। उन्हे 'साहित्य-दर्शन' का रहस्य समझने का प्रयास करना चाहिए।

इतनी भूमिका इसलिए बाँधनी पड़ी कि अनेक वादो, विवादों अथवा बकवादो के नाम पर हिंदी-साहित्य मे साप्रदायिकता का प्रचार किया जा रहा है और ऐसे सप्रदायी उलटे हिंदी के साहित्यिको को साप्रदायिक कह कहकर अवसर का लाभ उठाते दिखाई दे रहे हैं, सभा समितियो के सचालक मिट्टी के लोंदो को इन साप्रदायिको की चाल समझ मे नही आ रही है, सारा साहित्य बिगाड़कर ये अपनी टोली सबल करना और अपनी झोली भरना चाहते हैं। यथार्थवाद के साथ मार्क्सवाद और स्वच्छदतावाद के साथ फ्रायडवाद को जोड़ना चाहते हैं क्या, जोड़ ही दिया है। कहानी मे यथार्थवाद बढकर मार्क्सवाद या स्वार्थवाद तक पहुँचा। स्वच्छंदतावाद फूलकर फ्रायडवाद या वासनावाद तक डट गया। साहित्य का एक साध्य अर्थ अवश्य है, 'स्वार्थ' नहीं काम अवश्य है, वासना नहीं। साहित्य का सहृदय सामाजिक अवश्य है, पर न समाजवादी, न समाजी। साहित्य स्वार्थ का विसर्जन करने के लिए है, वासना का सस्कार करने के लिए है। भारत मजदूरों का मेला लगानेवाला नही, कृषको की अथाई जमाने-वाला है, भारत नगरों का चाकचक्य नही, ऋषियो की झोपड़ी है। जो इसे नही जानता वह भारती की वीणा का तार नही झकार सकता, वह प्रबध की व्यवस्था नहीं बाँध सकता, वह कथा की व्यथा नहीं पहचान सकता। जयशंकर 'प्रसाद' ने 'भारती' की वीणा बजाई थी, रामचद्रजी ने प्रबध का बधान बाँधा था, प्रेमचंद ने कथा की व्यथा सुनी सुनाई थी। जयशकर 'प्रसाद' ने हृदय के हलाहल को अमृत बनाया, रामचंद्रजी ने बुद्धि

की चिंता चिंतामणि से दूर की। प्रेमचंद ने हँसिया-हथौड़े के बदले हल-मूसल से चित्त का अनुरंजन किया। यह अभी कल की बात है। पर आज क्या हो रहा है! प्रेमचंद प्रगतिवादी नहीं थे, प्रगतिशील अवश्य थे, वे लोकायत नहीं थे, पर भाग्य के भरोसे बैठना पाप समझते थे। वे नेता नहीं थे, पर उनका नेतृत्व अब तक चल रहा है। वे हिंदुस्तानी नहीं, हिंदी थे, वे हिंदी के ही नहीं उर्दू के भी थे। प्रेमचंद की कहानी-कला समझने के लिए पहले साहित्य को समझिए, फिर भारत को हृदयंगम कीजिए। देश को देखिए, दुनिया भी दिखाई पड़ेगी। प्रेम को आँजिए चंद्र के प्रकाश में देश-प्रेम, जन-प्रेम, विश्व-प्रेम सब झलकने लगेंगे।

अँगरेजी के समीक्षकों ने कथा-कहानी के जो बहुत से भेद-प्रभेद कर रखे हैं और वाद-प्रवाद चला रखे हैं उनका ग्रहण चेतनरूप से करना चाहिए, जड रूप से नहीं। भारतीय परंपरा में साहित्य 'दर्शन' माना गया है। साहित्य में आत्मा का विचार उन्होंने जोड लिया था। भारत उसी शास्त्र को दर्शन संज्ञा देता है जिसमें आत्मा का विचार हो, जड का विचार करनेवाला 'विज्ञान' होता है, वह चाहे भौतिक विज्ञान हो चाहे मनो विज्ञान। यह तो सभी जानते हैं कि पश्चिम में नूतन मनोविज्ञान का उद्भव हो जाने पर भी उसमें आत्मा की खोज की प्रवृत्ति नहीं जगी है। भारतीय साहित्य ने अपने शास्त्रीय पक्ष के द्वारा जड और चेतन दोनों का विचार किया है। अभिनव गुप्त पादाचार्य से लेकर पंडितराज जगन्नाथ तक साहित्य के विचार में आत्मतत्त्व का विचार बराबर रहा है। प्रत्येक आचार्य किसी विशेष दर्शन का आचार्य होने के कारण साहित्य की व्याख्या भले ही अपने दर्शन के अनुकूल करता आया हो, पर यह निश्चित है कि ब्रह्मानंदसहोदरत्व का प्रतिपादन यों ही नहीं कर दिया गया है सबने आत्मतत्त्व की दृष्टि से इसका विचार किया है। अन्नमयकोष

स्थूल शरीर का वृत्त है, प्राणमय, मनोमय और विज्ञानमय कोष लिंग-शरीर का आभोग और आनदमय कोष आत्मा का अधिष्ठान। मार्क्सवाद स्थूल शरीर के आगे नही जाता, वह भूततत्त्व (मैटर) को ही सब कुछ मानता है। भारतीय साख्यशास्त्र मे प्रकृति-पुरुष का द्वंद्व माना अवश्य गया है, किंतु पुरुष की सत्ता पृथक् मानी गई है। वह प्रकृति का विकार नही माना गया है—प्रकृति मे विकृति हो सकती है पर 'न प्रकृतिर्न विकृति पुरुष.'—पुरुष न प्रकृति है और न विकृति। साहित्य रस को स्वीकार करके चला है, उसने चेतनतत्त्व को पृथक् स्वीकार किया है। अत वह निरीश्वर हो सकता है—साख्य हो सकता है पर लोकायत नही, द्वंद्वात्मक भौतिकवादी नही। वह 'अर्थवाद' को ले सकता है, पर धर्मवाद के साथ। 'धर्म' का सड़ा-गला अर्थ लगानेवालो को अध्ययन-मननका अभ्यास डालना चाहिए। 'अर्थ' की सीमा चाहे जितनी बढ़ाई जाय उसमे धर्म नही आता। पर 'धर्म' में 'अर्थ' भी अतर्भुक्त रहता है। त्रिवर्ग मे—धर्म, काम, अर्थ में—'सार' धर्म ही है—इनमे तारतम्य भी है—अर्थभूमि से कामभूमि और कामभूमि से धर्मभूमि की श्रेष्ठता है। केवल अर्थभूमि पर रहनेवाला बेकाम हो जायगा, केवल कामभूमि पर रहनेवाला व्यर्थ हो जायगा, कौड़ी काम का न रहेगा। केवल धर्मभूमि पर रहनेवाला न बेकाम होगा न व्यर्थ, क्योकि केवल धर्म मे काम और अर्थ का ग्रहण सूक्ष्म ही रूप में सही परिष्कृत रूप में ही सही, हो जाता है। केवल अर्थ की साधना करनेवाला स्वार्थी और बहुत गिरने पर पेटू मात्र रह जायगा। केवल काम की साधना करनेवाला कामी और बहुत गिरने पर लपट मात्र रह जायगा। शिश्नो-दरपरायणता को हिंदीवाले असज्जन का लक्षण मानते हैं, विश्वास न हो तो तुलसीदास से पूछ लीजिए।

जो स्थिति पुरुषार्थ की है वही एषणाओं की है। वित्तैषणा, दारैषणा

के साथ लोकैषणा का योग आवश्यक है। पर एकांतदर्शियों को कौन समझाए ! अर्थाभाव के कारण व्यथित चित्तों मार्क्स को गुरु मानना ठीक है, लोभी-लपटों के लिए फ्रायड या उनके चेले-चपाटियों की बातें काम की हो सकती हैं, पर काव्य के लिए तो कविकुलगुरु कालिदास की ही बात ब्रह्मवाक्य है—

अनेन धर्मः सविशेषमद्य मे त्रिवर्गसारः प्रतिभाति भाविनि ।
त्वया मनो निर्विषयार्थकामया यदेक एव प्रतिगृह्यसेव्यते ॥
—कुमारसंभव, ५-३८

त्रिवर्ग उत्कृष्ट प्रवृत्ति मार्ग हैं, फुट पर होने पर धर्म ही का स्वच्छंद ग्रहण होना चाहिए, अन्यों का नहीं। यह भारतीय निवृत्ति-मार्ग है। मार्क्स के पट्टशिष्य इसे पलायन मानते हैं और फ्रायड के शागिर्द परिष्कार (सब्लिमेशन)। श्रीकृष्ण कहते हैं दोनों को जोड़ो—अनासक्ति का योग करो। प्रवृत्ति और निवृत्ति को मिलाओ। काव्य भी कहता है सहयोग करो, साथ रहो, मिलकर चलो। पश्चिम और उत्तर धर्म के साथ दोनो का विरोध मानते हैं। समन्वय करना नही चाहते पर पूर्व और दक्षिण इनका समन्वय मानते हैं। काव्य यही कहता है—

घर कीन्हें घर जात है घर राखे घर जाय ।
तुलसी घर बन बीच ही राम-प्रेम-पुर छाय ॥

प्रेमचंद इन मत-वालों के चक्कर मे नही पड़े, साहित्य की पूर्ण दृष्टि से अपावन ठौर से भी कंचन ले लिया। भारतीय जीवन मे अर्थवैषम्य के कारण होनेवाली भीषणता की ओर उन्होने संकेत किया। उन्होंने मार्क्स का परिष्कार किया, पर फ्रायड से बात भी नहीं की। उनकी बहुत सी कहानियों मे मनोवैज्ञानिक अनुशीलन की प्रभूत सामग्री मिलेगी, पर वे नूतन मनोविज्ञान से अभिभूत नही हुए। उनके समय मे नूतन मनोविज्ञान आ तो चुका था, पर लेखकों को उसके दौरे नही आते थे। उसका दौरदौरा नही हुआ था।

इसलिए प्रेमचद की कहानियो की समीक्षा मे साम्यवाद और अर्थवाद की ही चर्चा की जा सकती है; स्वच्छंदतावाद या वासनावाद की नहीं। उनकी आरंभिक कहानियां सुधारवाद का झीना रूप लेकर चली थीं। मध्य कालिक कहानियाँ राष्ट्रवाद के सर्वसामान्य रूप की पोषिका थी और उत्तरकालिक कहानियाँ जनवाद (प्रोलिटेरियनिज्म) के भारतीय परिष्कृत रूप से ओतप्रोत। उनकी आरभिक-कहानियों में अतीत के चित्र भी हैं, पर आगे-चलकर उन्होने 'गड़े मुरदे उखाड़ना' बद कर दिया।

प्रस्तुत पुस्तक के लेखक ने प्रेमचंद की कहानियो को वास्तविक दृष्टि से देखने का पूर्ण प्रयास किया है। आरंभ मे कहानी-कला के विकास का इतिहास और कहानी संबंधी सिद्धातो का विवेचन पूर्वपीटिका के रूप मे जोड़कर लेखक ने प्रेमचंदजी का कला को परखने के लिए सर्वसामान्य कसौटी दे दी है। जिस प्रकार नई कहानियो के लिखने की प्रेरणा बाहर से मिली उसी प्रकार कहानियो की समीक्षा का मानदंड भी बाहर से ही लिया गया है। यद्यपि हमारे बहुत से कहानी लेखक ऐसी कहानियाँ प्रस्तुत कर रहे हैं जिनकी विशेषताओ का उद्घाटन करने में पश्चिमी कहानी-कला संबंधी समीक्षा असमर्थ है, तथापि पश्चिमी दृष्टि से ही अधिकतर कहानियाँ अब भी देखी जाती हैं। स्वतंत्र शास्त्र-चिंतन मे न लगना अक्षमता, आलस्य और अविवेक का परिचय देना है। प्रस्तुत पुस्तक के लेखक ने सर्वत्र स्वतत्र चितन तो नही किया है, किंतु किसी पश्चिमी बने बनाये मापदड से ही प्रेमचद की कला नही मापी है। सिद्धांतों को छोड़कर अन्यत्र विषय का विवेचन अपने ढग से करने का प्रयास किया है। इसीलिए पुस्तक जिज्ञासुओ के लिये विशेष महत्त्वपूर्ण है।

विश्वनाथप्रसाद मिश्र

ब्रह्मनाल, काशी
सौर १६-२-२००५

निवेदन

प्रस्तुत पुस्तक मेरी एम० ए० की थीसिस का परिवर्धित और संशोधित रूप है। हिन्दी-जगत् प्रेमचन्द का कितना ऋणी है इसे कहने की आवश्यकता नही है। हिन्दी मे कथा-साहित्य का इतिहास वास्तव मे प्रेमचन्द से ही प्रारम्भ होता है। प्रेमचन्द के पहले हिन्दी मे उपन्यास और कहानियाँ थी अवश्य, पर वे नही के बराबर थी। जो कुछ थी उनके कथानक मे कल्पित प्रेम, तिलिस्म और ऐयारी से पूर्ण आश्चर्यजनक तथा रोमाचकारी घटनाओ की एक लडी सजाई गई थी। उनमे वास्तविकता और कला का अभाव था जो साहित्य के प्रत्येक अग के लिये, विशेषतया कथा-साहित्य के लिये परमावश्यक है। इसके अतिरिक्त प्रेमचन्द के पहले हिन्दी की गद्य-शैली भी अविकसित थी। द्विवेदीजी के प्रभाव से हिन्दी-गद्य-शैली का परिमार्जन अवश्य हुआ था, पर उसमे निर्जीवता और शैथिल्य का प्राबल्य तथा सरलता और स्वाभाविकता का अभाव था। भाषा की ग्राहिका शक्ति परिमित थी, उसमे इतनी व्यापकता और उदारता न थी कि वह एक ओर तो उन्नत राष्ट्रो के भावो और विचारो को आत्मसात् करके उन्हे अपने मे खपा सके और दूसरी ओर जीवन और जगत् की सूक्ष्म और मनोवैज्ञानिक अतर्वृत्तियो का कलात्मक रहस्योद्घाटन कर सके। यद्यपि हिन्दी गद्य-साहित्य और शैली अभी निर्माण-काल मे है और कुछ अशो मे उपर्युक्त अभाव अब भी वर्तमान है, तथापि बहुत कुछ अशो मे इन अभावो की पूर्ति हो चुकी है। हिन्दी-कथा-साहित्य के इतिहास मे प्रेमचन्द सबसे पहले साहित्यिक है जिन्होने उपर्युक्त अभावो की पूर्त्ति की।

हिन्दी-क्षेत्र मे प्रेमचन्द्र क्रान्ति का उच्च और अमर सदेश लेकर आये, जिससे कथा-साहित्य के इतिहास मे युगान्तर उपस्थित हो गया। कल्पना और तिलिस्म के क्षेत्र से हटाकर उन्होने अपनी कहानियो और उपन्यासो मे वास्तविकता और कला का समावेश करके उसे एक विशिष्ट और मर्यादित साहित्य का स्वरूप दिया। अपने कथा-साहित्य का ढॉचा और कलेवर पश्चिम से लेते हुए भी उसमे भारतीयता की प्राण-प्रतिष्ठा करके अपनी उत्कृष्ट मौलिकता का परिचय दिया। योरप की 'कला के लिये कला' (Art for art's bake) की आँधी मे न बहकर उन्होने कला और साहित्य को जीवन से सबद्ध किया और बताया कि जिस साहित्य से हमारी आध्यात्मिक सुरुचि न जागे, जिससे हमारा नैतिक उत्थान न हो, वह श्रेष्ठ साहित्य कहलाने का अधिकारी नही। इतना ही नही, उन्होने अपने कथा-साहित्य को निम्न वर्ग की दीन-हीन भारतीय जनता से भी सबद्ध किया। अब तक नागरिक जीवन तथा उच्च वर्ग से ही कथाकार अपना कथानक लेते थे। प्रेमचन्द ने समझ लिया कि अधिकाश भारत गॉवो मे बसा है। परिणामतया दीन-हीन भारतीय कृषको का चित्रण करके देश के साहित्यिको और राजनीतिज्ञो का ध्यान भारतीय गॉवो की ओर आकृष्ट किया। इसलिये प्रेमचन्द जनता के सर्वप्रथम और महान् साहित्यकार कहे जाते है। हमारी राष्ट्रीय और जनता को सरकार न आज भारतीय ग्रामसुधार की समस्या को प्रधान महत्त्व दिया है। जिस दिन भारत दासता की बेडियो से मुक्त हो जायगा और भारतीय कृषक पूर्ण शिक्षित हो जायँगे, प्रेमचन्द के कथा-साहित्य मे जनता को वह वस्तु मिलेगी जो उन्हे तुलसी के रामचरित-मानस मे मिलती है।

परन्तु प्रेमचन्द ने भारतीय जीवन के अन्य वर्गो को अछूता नही

छोडा। उन्होने हिन्दू-मुसलिम ऐक्य, जो आज भारतीय स्वतत्रता का सबसे महत्त्वपूर्ण अग बन गया है, अछूतोद्धार, अहिसा आदि समस्याओ पर भी ध्यान दिया है। इस प्रकार वे एक प्रतिनिधि साहित्यकार के रूप मे हमारे सामने आते है। भाषा और शैली के क्षेत्र मे भी उन्होने हिन्दी गद्य को बहुत कुछ दिया है। हिन्दी गद्य-शैली का शैथिल्य हटाकर प्रेमचन्द ने उसे उर्दू की सरसता, मुहाविरेदारी और रवानी दी जिससे वह अधिक चुस्त और सुबोध बन गई। आज जिस हिन्दुस्तानी की समस्या पर इतना विवाद खडा हुआ है, उसका व्यावहारिक स्वरूप सबसे पहले प्रेमचन्द ने ही हिन्दी मे दिखाया। साराश यह है कि भाव और भाषा दोनो के क्षेत्र मे प्रेमचन्द ने हिन्दी गद्य-साहित्य को ऐसी भेट दी जिसके लिये वह शताब्दियो से तरस रहा था। यही कारण है कि उनकी कृति एक अमर और आदर्श साहित्य के रूप मे परिणत हुई। हिन्दी के लेखको मे उन्हे उच्च स्थान तो मिला ही, ससार के कहानी-लेखको मे उनका उच्च स्थान है। उनकी कृतियो मे से अधिकाश का अनुवाद देश की बँगला, गुजराती, मराठी, तामिल आदि प्रातीय भाषाओ मे हुआ है और कुछ का अनुवाद ससार की श्रेष्ठ भाषाओ मे, जैसे अँगरेजी, जर्मन, रूसी, डच और जापानी आदि मे हो चुका है, जो उनकी उत्कृष्ट प्रतिभा तथा कला-कुशलता का परिचायक है।

प्रस्तुत पुस्तक प्रेमचन्द की कहानियो के ही सबध मे है। इन्होने लगभग ४०० कहानियाँ लिखी है, जिनका उनके उपन्यासो की अपेक्षा अधिक आदर और प्रचार है, क्योकि कला की दृष्टि से वे अधिक सफल उतरी है। उपन्यासो को ध्यान मे रखकर कुछ पुस्तकें लिखी जा चुकी है, परन्तु उनकी कहानियो को ही पूर्ण-रूप से साहित्यिक विषय बनाकर पुस्तक-रूप मे देने का यह मेरा प्रथम प्रयास है।

वैसे तो हिन्दी-साहित्य के सभी अगो मे आज भी वृद्धि हो रही है, परन्तु उनमे कहानी और गीत-काव्य का अधिक प्रचार है। ऐसी कोई पत्रिका शायद ही मिले, जिसमे कहानियाँ और गीत न हो। विशेषकर हिन्दी का कहानी-साहित्य धनी हो चला है। कहानी की इसी लोकप्रियता को ध्यान मे रखकर कहानी-कला, उसका पूर्ण और उत्तरोत्तर विकास, कहानी के तत्त्व तथा हिन्दी मे कहानी-कला के विकास से सबद्ध दो अध्याय प्रारम्भ मे जोड दिये गये है। इससे पुस्तक की उपयोगिता कितनी बढ गई है, इसका आँकना पाठको का काम है।

अन्त मे अपने कुछ पूज्य गुरुजनो का स्मरण कर लेना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ, जिनकी कृपा और ऋण से केवल धन्यवाद-प्रकाशन मात्र से मै कदापि उऋण नही हो सकता और जिन्होने इस पुस्तक के सम्बन्ध मे मेरी सहायता की है। पूज्य प० विश्वनाथ प्रसादजी मिश्र का, जिन्होने निरन्तर अपनी कृपा से मेरे जीवन-निर्माण मे सहर्ष सहयोग दिया है, और जो सदैव अपने शिष्यो और साहित्य-प्रेमियो के उपकारार्थ तत्पर रहते है, मै कितना आभारी हूँ मेरा हृदय ही जानता है। प्रेमचन्द की केवल कहानियो को ध्यान मे रखकर एक स्वतत्र पुस्तक लिखने की सम्मति उन्होने ही मुझे दी। पुस्तक के लिये पर्याप्त सामग्री देकर तथा उसके लेखन मे उचित सम्मति देकर उन्होने मुझे सदैव उत्साहित किया है। पुस्तक की भूमिका लिखकर उन्होने मेरे ऊपर अपनी विशेष कृपा का परिचय दिया है, यह कहने की आवश्यकता नही है। श्रद्धेय डाक्टर जगन्नाथ प्रसाद शर्मा का भी मै विशेष आभारी हूँ, जिनकी सम्मति से मै एक और अध्याय जोडने के लिये उत्साहित हुआ तथा जिन्होने अपनी सहायता और कृपा से मुझे कभी निराश नही किया।

अपने आदरणीय मित्र प० करुणापति जी का भी विशेष आभारी हूँ, जिन्होने पुस्तक की पाण्डु-लिपि देखकर तथा य-त्रतत्र उचित सम्मति प्रदान कर मेरी सहायता की है।

पुस्तक शीघ्रता मे प्रकाशित हुई है, अतएव उन त्रुटियो का मै स्वागत करूँगा, जिनकी ओर सहृदय पाठक और समालोचक मेरा ध्यान आर्कषित करेगे।

गंगा दशहरा
काशी

श्रीपति शर्म्मा

विषय-सूची

प्रथम अध्याय

कहानी-कला का विकास और उसका विवेचन

कहानी का जन्म मानव-सृष्टि में भाषण-शक्ति के साथ ही हुआ। अपनी आदिम वन्यावस्था में मनुष्य अपने सजातियों से अपने जीवन-सम्बन्धी अनुभवों को सुनाने तथा उनसे कुतूहल-पूर्वक सुनने में एक स्वाभाविक अभिरुचि रखता था। लीलामयी सृष्टि के समस्त कार्य-व्यापार, प्रकृति के मोहक विभिन्न दृश्य, भोले मानव के हृदय में जिज्ञासा, कुतूहल तथा भय-मिश्रित आश्चर्य का भाव उत्पन्न करते थे। समस्त सृष्टि ही उसके लिए एक कहानी थी। थियोडोरवाट्स डन्टन Theodore wats Duntou ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक Renaissance of the wonder में मानव-जीवन के इसी आदि काल का वर्णन करते हुए बताया है कि किस प्रकार सूर्य, चाँद, तारे, वर्षा, अग्नि, वायु, जल और वृक्ष मनुष्य के हृदय में एक भय-मिश्रित कुतूहल तथा जिज्ञासा का सञ्चार करते थे। वेद, स्तुति तथा गीत रूप में उन्हीं भावों का सङ्कलन है। पुरुष जब दिन भर के भ्रमण के पश्चात् अपनी कुटिया पर आता, तो अपने अनुभवों को अपनी प्रियाके संमुख वर्णन करता। अतः इस आत्मानुभव को कह सुनाने की उत्सुकता कहानी का मूल कारण हुई और श्रोताओं का मनोरञ्जन

उसका उद्देश्य। लेखन-कला के अभाव में पूर्वजो ने प्राचीन साहित्य को पद्यमय ही रखना उचित समझा, क्योंकि पद्य को लोग गद्य से शीघ्र स्मरण कर सकते थे, और एक वंश से दूसरे वंश तक उसकी परम्परा भी चल सकती थी। परन्तु लेखन-कला का आविष्कार होते ही स्मरण करने की उतनी आवश्यकता न रही। पद्य के साथ ही साथ अपने दैनिक तथा आवश्यक व्यावहारिक कार्यों के लिए गद्य का लिखित स्वरूप आया। कल्पना तथा अतिरञ्जन के आवरण में निहित मनुष्य ने अपने अनुभवों को सर्वप्रथम मनोरञ्जन के लिए लिपिबद्ध किया। इसमे कहानी के बीज उपस्थित थे, जो सभ्यता और साहित्य के विकास के साथ पल्लवित तथा पुष्पित हुए।

कहानी का यह विकसित रूप संसार के प्रत्येक देश के साहित्य मे पाया जाता है जिसका स्वरूप मौखिक था। सभी जातियों मे बूढ़ी स्त्रियॉ बच्चों के मनोरंजन के लिए कहानियाँ सुनाती थीं। परन्तु लिपिबद्ध होकर साहित्यिक रूप मे उसका निर्माण सबसे प्रथम भारत में हुआ। ऋग्वेद मे, जो संसार का सर्वप्रथम उपलब्ध ग्रन्थ है, स्तुतियो के रूप मे कहानी के मूलतत्व उपस्थित है। वे ही पुराणो में मय, उर्वशी और पुरुरवा आदि आख्यानको के रूप मे प्रस्फुटित हुए। पुराणो के समय तक कथात्मक साहित्य का प्रचुर प्रसार हो गया था। ये कथाएँ धर्मोपदेश, शिक्षा, आध्यात्मिक विवेचन, दृष्टान्त तथा नीति के रूप मे हो चली थीं। इनके ये स्वरूप हमें ब्राह्मण ग्रन्थो और

उपनिषदो मे अधिक मिलते है। शतपथ ब्राह्मण, छान्दोग्योपनिषद्, कठोपनिषद् और तैत्तरीयोपनिषद् मे महर्पियो के पारस्परिक विचार-विमर्श के अवसर पर ऐसे आख्यानको का प्रसङ्ग आता है जिसमे कहानी-कला के बीज प्रचुर मात्रा मे उपस्थित है। कहानी का यह रूप भारत के प्राचीन साहित्य मे बन्दी नहीं हुआ, वरन् अधिक विकसित रूप में उत्तरोत्तर प्रस्फुटित होता गया। इसके पश्चात् जातक-कथाएँ आती है, जिनमे कहानी-कला के पूर्वरूप स्पष्ट विकसित होते दिखाई देते हैं। इन जातक-कथाओ मे पशु-पक्षियो को भी पात्रो के रूप में रखकर रोचकता लाने का प्रयत्न किया गया, जिससे इन कथाओं ने शीघ्र ही सर्व-प्रियता प्राप्त कर ली। यही नहीं बौद्ध भिक्षुओ ने इन जातक कथाओ को अपने धर्म-प्रचार का साधन बनाकर सुदूर देशो मे इनका प्रचार किया। इन कहानियो का अनुवाद अन्य भाषाओ में भी हुआ और इनसे वहाँ का कहानी-साहित्य अधिक प्रभावित हुआ। ईसप की कहानियाँ (Aescp's Fables) फारस और अरब के ओडासियस और सिन्दबाद सेलर (Sindabad the Sailor) की कहानियाँ इन्हीं जातक-कथाओ के आधार पर लिखी गई थीं। अतः कहानी-साहित्य के इतिहास मे इन जातक-कथाओ का बड़ा महत्त्व-पूर्ण स्थान है।

प्राचीन भारत का कहानी साहित्य

इसके पश्चात् संस्कृत साहित्य मे कहानी के दो प्रसिद्ध ग्रन्थ

पञ्चतंत्र और हितोपदेश मिलते है। इनमें पशु-पक्षियों को पात्र मान कर उनके द्वारा सरस सूक्तियो, सुन्दर उपदेशों तथा समाज की व्यावहारिक नीतियो का उल्लेख किया गया है। जनता मे ये ग्रन्थ बड़े प्रिय हुए और इन्हे पर्याप्त ख्याति मिली। इसी काल के लगभग गुणाढ्यकृत 'बड्ढकहा' का निर्देश मिलता है जो पैशाची भाषा मे लिखा गया था। ईसा की सातवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे संस्कृत साहित्य के प्रसिद्ध गद्य-लेखक बाणभट्ट ने कादम्बरी नामक कथा-साहित्य का एक अमर ग्रन्थ लिखा। प्रेम-गाथा के रूप मे कुछ प्रधान पात्रो को लेकर कहानियो की एक बड़ी सुसम्बद्ध शृंखला इसमे जोड़ी गई है, जिसमे वर्ण्य विषय की रोचकता के साथ ही साथ भाषा और शैली का बहुत परिपक्व रूप दिखाई पड़ता है। इसी समय दण्डी ने 'दश कुमार चरित' लिखा जो संस्कृत आख्यायिका-साहित्य का एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इसके पश्चात् सोमदेव का कथा-सरित्सागर मिलता है, जो ईसा की दशवीं शताब्दी की रचना है।

वस्तु-विधान तथा कथा की रोचकता के साथ ही साथ संस्कृत के इन कथाग्रन्थो मे स्पष्ट चरित्र-चित्रण और विकसित कथोपकथन भी मिलते है। इतना ही नहीं आख्यायिका के विविध स्वरूप जैसे—लौकिक कथाएँ (Folk Tales) रोमाञ्चकारी कथाएँ (Romantic Tales) तथा अलौकिक कथाएँ (Supernatural Tales), जिनका प्राचीन इतिहास बहुत से पाश्चात्य समालोचक अपने यहाँ के साहित्य में दिखलाते हैं,

संस्कृत के इन कथा-ग्रन्थों में बहुत पहले से अत्यन्त विकसित रूप में पाए जाते हैं।

भारतवर्ष के अतिरिक्त पाश्चात्य देशों के साहित्य में भी कहानी-कला का विकास पाया जाता है, जिसका यहाँ संक्षेप में वर्णन कर देना अनावश्यक न होगा। पाश्चात्य देशों में मिस्र और यूनान की सभ्यता बहुत प्राचीन है। इन देशों के प्राचीन साहित्य में कहानी के कुछ अत्यंत प्राचीन यूनान और मिस्र में नमूने मिलते हैं। मिस्र में 'खफरी की कहानी' ईसा से ४००० वर्ष पूर्व की है और यूनान में 'शाही खजाना' नाम की कहानी इसके पश्चात् की है। इसके अतिरिक्त हिब्रू की टोबिट तथा लैटिन में लिखी गई रेट्रोनियस में 'इफेसस की विधवा' नाम की कहानियाँ हैं। ऊपर बताया जा चुका है कि जातक कथाओं के आधार पर फारस तथा अरब में ओडेसियस और सिन्दबाद सेलर की कहानियाँ लिखी गईं। इन कहानियों में विभिन्न देशों और जातियों के अनुसन्धान तथा साहसपूर्ण कार्यों और अनुभवों का समावेश किया गया। इनमें कल्पित रोमाञ्चकारी घटनाओं का वर्णन रहता है। वास्तविकता का उतना ध्यान नहीं रक्खा जाता था जितना अद्भुत और आदर्श के समन्वय का। इसके अतिरिक्त उपर्युक्त कहानियाँ किसी शासक से विशेषतया सम्बद्ध थीं, उनमें न तो कहानी-कला के उपादान प्रचुर परिमाण में थे और न नूतनता का ही समावेश था।

नये ढङ्ग की कहानियों का सबसे पहला लेखक इटली का बोकैशियो (Boccacio) था, जिसने Decameran नामक ग्रन्थ लिखकर कहानी-संसार में एक जागर्त्ति का सञ्चार किया।

इटली का कहानी साहित्य

डिकैमरान में प्रेम की एक कथा का काल्पनिक वस्तु-विधान करके सामाजिक परिस्थितियों के हृदय-ग्राही वर्णन के साथ पात्रों के अन्तर्द्वन्द्व के चित्रण में लेखक ने सम्यक् सफलता प्राप्त की है। परन्तु इन मध्यकालीन कहानियों का उनसे बहुत भेद था जिनकी सृष्टि उन्नीसवीं शताब्दी में योरप की प्राय: सभी भाषाओं में होती है। इन भाषाओं में रूसी और फ्रेञ्च सबसे मुख्य भाषाएँ हैं, जिनमे कहानी-कला को आधुनिक स्वरूप मिला।

रूस, फ्रांस और इङ्गलैंड की आधुनिक कहानियो पर दृष्टि-पात करने के पूर्व वहाँ के सामयिक वातावरण पर भी प्रकाश डाल देना उचित होगा।

औद्योगिक क्रान्ति और कहनी-कला में परिवर्तन

उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे समस्त यूरोप में औद्योगिक क्रान्ति (Industrial-Revolution) की एक प्रबल लहर फैल गई। इसका आरम्भ पहले इङ्गलैंड से हुआ परन्तु धीरे-धीरे यूरोप में इसका प्रभाव फैल गया। देश मे हस्त-कला का स्थान मशीनो ने ले लिया और चारो तरफ बहुत से कल़-कारखाने खुलने लगे। उद्योग-धन्धो पर पूँजीपतियों का

अधिकार हुआ और कलाकार तथा दीन श्रमजीवी उनके आश्रित होने लगे। उदर-पोषण के लिए रातदिन इन श्रमजीवियों को पुतलीघरो और कारखानों में घोर परिश्रम करना पड़ता था। आमोद, प्रमोद तथा मनोरञ्जन के लिए उनके पास पहले से कम अवकाश मिलता था। पढ़े-लिखे लोगों का क्षेत्र भी सीमित था। अब तक मध्यम और उच्चवर्ग के ही लोग अधिकतया शिक्षित थे। प्रजातन्त्र के विकास से निम्नवर्ग के लोगो मे भी शिक्षा का प्रसार होने लगा। अब तक पढ़े-लिखे व्यक्तियो के मानसिक मनोरञ्जन का काम उपन्यास, नाटक तथा काव्यग्रन्थ देते थे। अब उन्हें एक ऐसे साहित्य की आवश्यकता हुई जिससे थोड़े अवकाश मे प्रायः उतना ही मनोरञ्जन हो। अतः लेखको ने इस आवश्यकता को देखकर उपन्यासो को छोटा रूप देकर सरलता से कहानियो मे परिणत किया। इस तरह कहानियो की माँग जनता में और अधिक हो गई।

रूस का कहानी साहित्य

रूस मे इस औद्योगिक क्रान्ति ने एक दूसरा ही प्रभाव डाला। वहाँ पर इने-गिने पूँजीपति बहुत समय से एकतन्त्र शासन करते रहने के कारण प्रजा पर अत्याचार करने के अभ्यस्त हो गए थे। मजदूरो और दीनो की संख्या अधिक थी। शिक्षा के प्रसार से उनमे विशेष जागृत्ति हुई और उनकी सुसंघटित शक्ति ने पूँजीपतियो के विरुद्ध समाज में एक क्रान्ति कर दी। समाजवाद (Socialism) का प्रचार

हुआ जिससे वहाँ के कहानी-साहित्य पर भी प्रभाव पड़ा। कहानी-लेखक के उद्देश्यों और आदर्शों मे भी अन्तर पड़ा। अब तक कहानियाँ काल्पनिक, आदर्शात्मक, साहसिक और रोमाञ्चकारी होती थीं। यथार्थवाद (Realism) का उनमे उतना समावेश न था। समाजवाद की लहर ने कहानी-लेखन के उद्देश्य को परिवर्त्तित कर दिया। रूसी कहानी-लेखको के सामने दलित, पीड़ित और दीन रूसी समाज के उद्धार का प्रश्न था। इसलिए उन्होने अपनी कहानियो में पीड़ित रूसी समाज का वास्तविक चित्रण करके कहानी-कला की धारा को वास्तविकता की तरफ अधिक मोड़ा। इन रूसी कहानी-लेखको मे तुर्गनेव, चेखव, गोर्की और टालस्टाय अधिक प्रसिद्ध हैं। इन कहानीकारो ने संवेदनात्मक कहानियाँ लिखकर बड़े ही मार्मिक रूप मे मजदूरो तथा दीन जनता की दुर्दशा का चित्रण किया और सामाजिक जीवन के बड़े ही मार्मिक दृश्य रखे। परन्तु इन रूसी कहानियो में जीवन के दुःखान्त तथा मार्मिक दृश्यो की ही भरमार रही। जीवन की विविधता और अनेकरूपता, जो बाद की कहानियो मे आई, इनमें नहीं थी।

परन्तु अभी तक कहानियो का कथानक ढीला, उनकी वर्णन-शैली निर्जीव और प्रभाव-रहित होती थी। उसमे एक ही लक्ष्य की अभिव्यक्ति, जो कहानी का प्राण है, न थी। इस ओर सबसे पहले अमेरिका के कहानी लेखको ने ध्यान दिया। एडगर एलेन पो, हाथर्न और ब्रेट हार्ट अमेरिका के जगत्प्रसिद्ध कहानी-कला

आविष्कारक हो गये है। इनमे पो का नाम प्रधान है। उपन्यास तथा अन्य दीर्घ आकार की कथा के बीच मे से कहानी की सर्वप्रथम सृष्टि करने का श्रेय पो ही को है। पो ने ही सबसे पहले स्पष्ट शब्दों मे कहानी की रूप-रचना को उपन्यास के वेषविन्यास से भिन्न बताया तथा उसमे एक लक्ष्य और एक प्रभावोत्पादकता का सन्निवेश किया जिससे कहानी-कला के रूप मे विशेष वृद्धि हुई।

अमेरिका का कहानी साहित्य

इसके पश्चात् बहुत से उपकरणो (Elements) का समावेश किया गया जिनमें विशेष उल्लेखनीय नाटकीय उपकरण (Dramatic element) है जो फ्रांस के कहानी-लेखको द्वारा लाया गया। इसके अनुसार नाटक की भांति कहानी मे भी वस्तु, स्थान तथा काल (Three unities) की एकता को उपयोग मे लाए जाने का प्रचार हुआ। कहानियों के लिए यह नियम बनाया गया कि उनमे एक ही पात्र, एक ही घटना, एक ही भावतथ्य और एक ही दृश्य से उत्पन्न भावना का चित्रण किया जा सकता है। यद्यपि इस नियम का पालन कठोर रीति से नहीं किया जा सकता था, और न किया गया तो भी इसके द्वारा कहानी-कला मे बहुत से महत्त्वपूर्ण परिवर्त्तन हुए जिनमे सबसे पहला यह था कि नाटक की भांति कहानी में भी प्रभावोत्पादक वस्तु की ही योजना की गई। इसके अतिरिक्त यथार्थ चित्रण का

फ्रांस के कहानीकार

भी समावेश किया गया। परन्तु वह चित्रण रूसी कहानीकारों के चित्रण से सर्वथा भिन्न था। फ्रांसीसी समाज सुखी और सम्पन्न था। उसमें सभ्यता और कला का यथेष्ट विकास था। अतः फ्रांसीसी कहानीकारों ने, जिनमें, जेरोम, जोला और मोपांसा मुख्य हैं, अपनी कहानियों में एक सुसम्पन्न समाज का कलामय चित्र खींचा। इन कहानियों का हिन्दी में भी रूपान्तर हो गया है।

सारांश यह है कि अमेरिका, रूस और फ्रांस के कहानी लेखकों ने कहानी कला को बहुत ही आगे बढ़ाया। उसको कल्पना और आदर्श के पथ से हटाकर वास्तविकता की ओर मोड़ा। उसमें जीवन-चित्रण, प्रभावोत्पादकता और मनोविज्ञान का समावेश किया। इन लेखकों के समकक्ष कहानी-लेखकों का इङ्गलैण्ड में भी अभाव न था। मेरेथिड (Mereithd), हार्डी (Hardy), (Stevenson) स्टीवेन्सन, वेनेट आदि वहाँ के कलाकारों ने उत्तम कहानियाँ लिखकर साहित्य के भण्डार की पूर्ति की।

इङ्गलैण्ड में कहानी लेखक

प्राचीन भारत की कहानियों का वर्णन करते हुए संस्कृत साहित्य में कहानी का विकास ईसा की १० वीं शताब्दी तक दिखाया जा चुका है। परन्तु प्राचीन भारत के कहानी-साहित्य का उपर्युक्त इतिहास मुसलमानों के भारतवर्ष में आने के पूर्व का

है। मुसलमानो के आगमन और सम्पर्क ने भारतीय संस्कृति को विशेष प्रभावित किया। रहन-सहन, वेष-भूषा, आचार-व्यवहार के साथ-ही-साथ हिन्दुओं की भाषा, कला और साहित्य पर भी मुसलमान संस्कृति की छाप पड़ी, परिणामतया भारतीय कथा-साहित्य, जो पहले उपदेशात्मक तथा धर्म-प्रधान था, धीरे-धीरे प्रेम-लीला और विलासिता के रङ्ग मे रंग गया। फारस के 'लैला मजनू' और 'गुलबकावली' जैसी कहानियाँ लिखी गईं। 'सारङ्गा सदावृक्ष' के ढङ्ग के दास्तान गढ़े जाने लगे जिनको जनता ने बड़ी रुचि से अपनाया। 'यथा राजा तथा प्रजा' वाली कहावत चरितार्थ हो रही थी। विलास-प्रिय मुगलों के जीवन ने प्रजा पर भी विलासिता की छाप डाल दी थी। इसलिए समाज मे प्रेम और विलासिता की कहानियों का प्रचार हुआ। पर इन कहानियो मे न तो चरित्र-चित्रण, न उपदेशात्मकता और न कोई कला थी। केवल लच्छेदार भाषा मे प्रेम के विकृत रूप का तथा मन को आकर्षित करने वाली घटनाओं का वर्णन है। फलतः जनता के नैतिक जीवन को इन कहानियो ने दूषित किया।

कहानी कला यवनकाल मे

इसके पश्चात् भारतवर्ष मे अँगरेजो का आगमन और अधिकार हुआ। अँगरेजी संस्कृति और साहित्य की लहर समस्त देश मे वह चली, जिसने यहाँ की संस्कृति और साहित्य को विशेष रूप से प्रभावान्वित किया। अङ्गरेजी भाषा जनता की शिक्षा

का माध्यम बन चुकी थी। अंगरेजी साहित्य के अन्य अगो के साथ ही साथ कहानी साहित्य का भी अनुकरण और अनुवाद धड़ल्ले से होने लगा। अंगरेजी साहित्य से सबसे पहले बॅगला साहित्य प्रभावित हुआ, परिणामतया बॅगला साहित्य मे अंगरेजी के ढङ्ग की छोटी-छोटी कहानियाॅ लिखी जाने लगीं, जिनके आधार पर हिन्दी मे भी आधुनिक ढङ्ग की कहानियो का सूत्रपात्र हुआ। हिन्दी के आधुनिक कहानी-साहित्य और कहानीकारो के विषय में विस्तृत रूप से अगले अध्याय मे लिखा जायगा।

कहानो के तत्व और स्वरूप

आधुनिक कहानी, साहित्य का एक विशिष्ट अंग तथा एक स्वतंत्र कला हो गई है। क्योकि जिस उद्देश्य से जो प्रभाव नाटक, काव्य और उपन्यास से पाठको के हृदय पर डाला जाता है, उसी की पूर्ति आधुनिक कहानियाॅ भी कर रही है। साहित्य के एक स्वतंत्र अंग होने के कारण सर्वप्रथम कहानी की व्याख्या कर लेनी चाहिए। हिन्दी-कहानी-लेखको में प्रेमचन्द का स्थान सर्वोच्च है, इसलिए कहानी की जो व्याख्या उन्होने की है उसे यहाॅ दे देना अनुचित न होगा।

'गल्प एक रचना है जिसमें जीवन के किसी एक अङ्ग या किसी एक मनोभाव को प्रदर्शित करना ही लेखक का उद्देश्य रहता है। उसके चरित्र, उसकी शैली, उसका कथा-विन्यास सब उसी एक भाव को पुष्ट करते है। उपन्यास की भाॅति उसमें

मानव-जीवन का संपूर्ण तथा बृहद् रूप दिखाने का प्रयास नहीं किया जाता, न इसमें उपन्यास की भाँति सभी रसों का संमिश्रण होता है। वह ऐसा रमणीय उद्यान नहीं जिसमें भाँति-भाँति के फूल, बेल, बूटे सजे हुए हैं, बल्कि एक गमला है जिसमें एक ही पौधे का माधुर्य अपने समुन्नत रूप में दृष्टिगोचर होता है।'

कहानी की इतनी सुन्दर व्याख्या शायद ही किसी ने की हो। कहानी और उपन्यास में, जैसा ऊपर कहा गया है, केवल आकार का ही भेद नहीं है, वरन् उनमें लक्ष्य और उद्देश्य की भी भिन्नता है। कहानियों के अधिक प्रचार से लोगों में यह आशंका हो गई है कि उपन्यासों का स्थान कहानियाँ ले लेंगी और उपन्यास रह ही न जायँगे। परन्तु इस प्रकार की

कहानी और उपन्यास

आशंका निर्मूल है। कहानी के छोटे क्षेत्र में जीवन की उतनी अधिक विवेचना हो ही नहीं सकती जितनी उपन्यास में होती है। उसमें पात्रों के चरित्र का उतना अच्छा विकास और चित्रण भी नहीं हो सकता जिसके लिए उपन्यासों का इतना महत्व और आदर है। हमें प्रेमाश्रम, गोदान और सेवा-सदन इत्यादि में जीवन के जितने विभिन्न चित्र मिलते हैं, उतने चित्र एक या कई आख्यायिकाओं में भी नहीं आ सकते। जिस प्रकार संसार के मनुष्यों और कार्यों का निरीक्षण करने में हमें बहुत अधिक समय लगता है, उसी प्रकार पुस्तकों में भी उनसे परिचित होने के लिए अधिक समय लगाना आवश्यक और अनिवार्य है। सारांश यह है कि कहानी में

उपन्यास की अपेक्षा पात्रों और घटनाओं की संख्या कम रखने के साथ ही साथ कथावस्तु और वातावरण को और सरल बनाना पड़ता है। कहानी-लेखकों को कहानी मे उपन्यास की भाँति जटिलता लाने, इधर-उधर भटकने और अंतःकथाओ के निर्माण करने का अवकाश नहीं मिलता।

कथावस्तु या घटना

कहानी का कथानक उपन्यास की कथा-वस्तु की अपेक्षा अधिक सरल और आकर्षक होना चाहिए। कहानी-लेखक इस कथावस्तु को जीवन की किसी घटना से पा सकता है। उसे आँख उठाकर देखने की आवश्यकता है, बस समाज में उसे सर्वत्र कहानी के लिए कथानक प्रस्तुत मिलेगा। जैसा कि एक सुप्रसिद्ध लेखक ने लिखा है, कहानी का कथानक तो हवा में से भी प्राप्त हो सकता है यदि लेखक मे पर्यवेक्षण शक्ति हो। परन्तु कहानी में कथावस्तु और घटना का चित्रण तभी सफल और हृदयग्राही होता है जब उसमे कहानी-लेखक का दृष्टिकोण मौलिक हो। सूखे से सूखे विषय मे सरसता लाई जा सकती है। काव्य या निबंध की भाँति कहानी के कथानक या घटना के विषयो की तालिका सीमित नहीं की जा सकती। एक ही कथानक को लेकर कई मौलिक कहानियाँ लिखी जा सकती है। जीवन की सामान्य से सामान्य घटना कुशल कहानीकार के हाथ मे पड़कर अमर कला का रूप प्राप्त कर लेती हैं। पाश्चात्य कहानी-लेखकों ने

नगण्य से नगण्य कथावस्तु को, जिसके ऊपर हम अधिक सोचना भी पसंद न करेंगे, अमर कहानी का रूप दिया है। दूर क्यों जाइये। चन्द्रधर शर्म्मा गुलेरी की 'उसने कहा था' कहानी की घटना कितनी साधारण है, पर उसी को लेखक ने अपनी कला और प्रतिभा से विश्व की एक प्रसिद्ध कहानी के रूप में परिणत कर दिया है। दृष्टिकोण की मौलिकता के साथ कथावस्तु की सुसम्बद्ध योजना (Proportionate Setting) करना दूसरी आवश्यक बात है। कहानी-लेखक को सारा कथानक इस प्रकार सजाना चाहिए कि कथानक का एक-एक भाग क्रमशः चरम सीमा (Climax) की ओर बढ़ता चले, उसकी धारा में तनिक भी शैथिल्य न आने पावे और इस वृद्धि के साथ ही साथ पाठक के हृदय में उत्तरोत्तर उत्सुकता और जिज्ञासा की प्रवृत्ति बढ़ती जाय।

कथावस्तु का पात्र से घनिष्ठ सम्बन्ध है। बिना पात्र के कोई घटना या कथानक असंभवप्राय सा है। कहानी में उपन्यास की अपेक्षा पात्रों की संख्या कम रहती है।

पात्र

कभी-कभी सारी कहानी में दो पात्र ही देखे जाते हैं। पात्रों और पात्रियों के लिए सबके प्रधान वस्तु यह होनी चाहिए कि वे सजीव हों। कभी-कभी इसका परिणाम यह होता है कि लेखक के विश्वास, विचार और उसकी इच्छाएँ हमें पात्रों के मुख से सुनने को मिलती हैं। उनमें कोई मौलिकता नहीं होती। इस तरह से कला निम्न कोटि की

हो जाती है। संसार के विश्वविख्यात कलाकारों के चरित्रो में यह बात नहीं मिलती। शेक्सपियर के अनेक नाटको में राजा, रक, डाक्टर, विदूषक, न्यायाधीश, सौदागर, प्रेमी, सेविका आदि सभी तरह के पात्र है। परन्तु सबका चित्रण इतना स्वाभाविक और हृदयगाही है कि वे जीते-जागते पुतले मालूम होते है। इन अनेक चरित्रों के बीच शेक्सपियर कहां है, इसका पता लगाना समालोचको के लिए एक टेढ़ी खीर है। तात्पर्य यह कि नाटककार को अपना व्यक्तित्व अलग करके पात्रो का वर्णन करना चाहिए। विलियम मेकपीस थैकरे, जो १६ वीं शताब्दी में इङ्गलैंड का एक महान् उपन्यास लेखक हो गया है, कहता है कि 'मेरे पात्र मेरे वश मे नहीं रहते वरन् मेरी लेखनी, उन पात्रो के वश में हो जाती है।' सारांश यह है कि पात्रो को कहानी में स्वाभाविक और जीता जागता चित्रित करना चाहिए। कहानिओ में चरित्र के पूर्ण अंश को न दिखाकर उसकी आंशिक झलक ही दिखाई जाती है। सबसे श्रेष्ठ कहानी वह होती है जिसमे लेखक चरित्र के किसी मनोवैज्ञानिक सत्य की व्याख्या करे। चरित्र को आकर्षक बनाने के लिए पात्र के जीवन के संवेदनात्मक अंशो को भी दिखाना चाहिए। किसी ऐसे चरित्र की उद्भावना, जिसे पाठक समाज में न पा सके, कहानी की स्वाभाविकता में बाधक होती है। ऐतिहासिक कहानिओं में चरित्रों की वेष-भूषा तत्कालीन परिस्थिति के अनुकूल होनी चाहिए।

पाठक के हृदयमें औत्सुक्य का प्रवाह बराबर बनाए रखने

के लिए कहानी-लेखक को एक सबल और आकर्षक कथोपकथन का निर्माण करना पड़ता है। पात्रों के

कथोपकथन

कथोपकथन द्वारा ही हम उनके विचार, आदर्श और दृष्टिकोण से परिचित होते हैं। कभी-कभी दो पात्रों के वार्तालाप से हमें तीसरे चरित्र की विशेषता ज्ञात हो जाती है। कथोपकथन के लिए सबसे आवश्यक बात यह होनी चाहिए कि वह पात्र और परिस्थिति के अनुकूल हो। दूसरी आवश्यक बात यह है कि कथोपकथन में तनिक भी अंश फालतू न हो। उसे उपन्यास के कथोपकथन की अपेक्षा बहुत ही संयमित तथा नियंत्रित होना चाहिए। कभी-कभी लेखक चरित्रों के मुँह से लम्बे भाषण दिलाकर कहानी की स्वाभाविकता नष्ट कर देते हैं। साथ ही साथ लम्बे कथोपकथन से उसके प्रवाह में शिथिलता आ जाती है। एक श्रेष्ठ कथोपकथन में घटनाओं के विस्तार के साथ ही साथ पात्रों के अंतर्द्वन्द्व तथा मानसिक उत्कर्ष (Psychological Growth) का भी सफलता से चित्रण होता है, जिसका प्रयोग उत्तम कोटि के कलाकार करते हैं।

उपन्यास की भाँति कहानी-लेखक को घटना और पात्रों से सम्बद्ध स्थान, समय और परिस्थिति का भी चित्रण करना पड़ता है। इसलिए कहानी-लेखक को

देश, काल और वातावरण

घटना या चित्रण को चित्ताकर्षक बनाने के लिए प्रकृति, ऋतु या दृश्य का वर्णन

करना पड़ता है। कहीं-कहीं संक्षेप में प्रकृति के दृश्य की एक झाँकी दिखाकर ही कहानी-लेखक को सन्तोष करना पड़ता है।

उपर्युक्त तत्वों के साधन में कहानी यदि नाटक और उपन्यास से कुछ मिलती-जुलती है, तो अपने वर्णन तथा शैली के ढंग में तो उसे एक पृथक् मार्ग का अनुगामी होना पड़ता है। कहानी में वर्णन करने का ढग अत्यंत आकर्षक, उसकी गति अत्यंत धारावाहिक होनी चाहिए। भाषा में बनावट नहीं होनी चाहिए बल्कि उसे सजीव और मुहाविरेदार होना चाहिए जिससे पाठक एक क्षण के लिए भी उसकी ओर से अन्यमनस्क न हो। कहानी में एक संवेदना और एक प्रभाव का वर्णन होना चाहिए। बहुत से समालोचक तो इस प्रभाव की एकता (Unity of impression) को ही साहित्य और कला का मान-दंड मानते हैं। कहानी की कथावस्तु कुछ भी हो, परन्तु यदि वह अपनी सजीव वर्णनशैली से पाठक के हृदय पर एक अमिट प्रभाव छोड़ जाती है, तो वही श्रेष्ठ कहानी है।

वर्णन शैली

यद्यपि कहानियाँ आजकल मनोरंजन के लिए लिखी जाती है, परन्तु कहानी का उद्देश्य साहित्य के अन्य अंगों की तरह केवल मनोरंजन करना ही नहीं है। कहानी का उद्देश्य जनता की सुरुचि बढ़ाना तथा उसका नैतिक उत्थान करना भी है। कहानी-लेखक को समाज और चरित्रों की दुर्बलताओं

कहानी का ध्येय

का यथातथ्य रूप में चित्रण अवश्य करना चाहिए, जिससे पाठक संसार की विषमताओं से परिचित हो जाय और उनके धोखे में न पड़े। परन्तु कहानी-लेखक को आदर्श और उत्थान की ओर अपनी कला के ध्येय को उन्मुख रखना चाहिए; अन्यथा साहित्य का पठन-पाठन निरुद्देश्य हो जाता है। पश्चिम और पूर्व के साहित्यकारों में इस विषय में बहुत मतभेद है। कला के लिये कला के नाम पर (Art for the sake of Art) पाश्चात्य कहानी-लेखक जीवन का यथार्थ और नग्न चित्रण करते हैं; परन्तु भारतीय कला सदा समाज और देश के नैतिक उत्थान को लेकर चलती है। इसलिए कहानी-लेखक को भी अपने ध्येय को वैसा ही बनाना चाहिए।

कुछ लेखकों ने भावुकता, संवेदना, अलौकिकता और हास्य (Emotion, Sentiment, Fantasy and Humour) को भी कहानी के तत्व माना है, जिसे कुछ अंशों तक उचित कहा जा सकता है। परन्तु इन सब तत्वों का प्रयोग एक कुशल कहानीकार ही कर सकता है। किस स्थल पर किस तत्व की कितनी आवश्यकता है यह परखना बड़ी बुद्धिमानी का काम है। आदि के दो तत्वों (भावुकता और संवेदना) के संबंध में इतना अवश्य कहा जा सकता है कि कहानी-कला तब तक साहित्य का अंग कहलाने का दावा नहीं कर सकती, जबतक उसमें किसी अनुभूति या संवेदना का मार्मिक चित्रण न हो। रोमान्टिक कहानियों में तो इनका प्रधान स्थान रहता है।

ऊपर जो कुछ लिखा गया है उससे स्पष्ट है कि एक सफल कहानी में स्थान की कमी तथा उद्देश्य की विशेषता के कारण कहानी के सभी तत्वों में पूर्ण नियन्त्रण तथा संयोजन की आवश्यकता होती है; अतएव एक ओर जहाँ उन प्रसंगों को आने से रोकना चाहिए जो कहानी के मार्ग में बाधक हों, वहीं ऐसे स्थलों को लाने की आवश्यकता पड़ती है, जो कहानी के प्रवाह में उत्तरोत्तर विकास करनेवाले हों। अभिप्राय यह है कि उसके एक-एक वाक्य को सार-भूमि या चरम सीमा (Climax) की ओर अग्रसर होना चाहिए। यह चरमसीमा ही उसकी समन्वित संवेदना तथा प्रभावोत्पादकता का परिचायक है। एक कुशल कहानीकार की कला का पता हमें उसके पहले ही वाक्य, यहाँ तक कि शीर्षक से ही लग जाता है।

कहनी के तत्वों पर आवश्यकतानुसार अधिक कहा जा चुका। अब आधुनिक कहानियों के स्वरूप और प्रणालियों पर भी दृष्टि डालनी चाहिए। कहानियों का आजकल इतना विस्तृत विकास हो गया है, उनके इतने स्वरूप हमारे सम्मुख आ गये हैं कि उनका वर्गीकरण करना कठिन सा हो गया है। तत्व के ही आधार पर चलें तो प्रत्येक कहानी में किसी न किसी तत्व की प्रधानता रहती है। इस प्रकार तत्व-प्राधान्य के आधार पर कहानी के चार भेद किये जाते हैं।

कहानी के स्वरूप

१-घटना-प्रधान—अधिकांश कहानियाँ घटना-प्रधान

ही पाई जाती हैं। कहानी-साहित्य के इतिहास की यही आरम्भिक अवस्था है। वे ही कहानियाँ चिरकाल तक जीवित रहती है जिनमें भौतिक घटनाओ के स्थान में अंतर्जगत् की घटनाओका दृश्य रहता है। घटना-प्रधान कहानियों में लेखक चरित्रों के विकास की ओर ध्यान न देकर घटनाओं को रोचक, कुतूहलपूर्ण बनाकर पाठको का मनोरंजन करता है। प्रायः साधारण कोटि के पाठकों को ऐसी कहानियाँ प्रिय लगती हैं। जासूसी कहानियाँ इसी ढङ्ग की होती हैं।

२-चरित्रप्रधान—आजकल चरित्र-प्रधान कहानियाँ अधिक लिखी जाती हैं। चरित्र-प्रधान कहानी का पद घटना-प्रधान कहानीसे ऊँचा समझा जाता है। परन्तु कहानी मे उपन्यास के समान चरित्र-व्याख्या का अधिक अवकाश नहीं रहता। कहानी में सम्पूर्ण चरित्र को हम नहीं दिखा सकते वरन् उसके एक अंग को दिखलाते हैं। चरित्रो के लिए यह आवश्यक नहीं कि वे आदर्श हो। किसी देवता का चित्रण अच्छा भले ही हो, पर हमारी उससे सहानुभूति नहीं होती, इसलिए हम अपने-जैसे चरित्रो की ओर, जो दुर्बलताओ से भरे है अधिक आकर्पित होते हैं, यहाँ तक कि प्रायः पाठकों का हृदय दुर्बल चरित्रो को अपने अधिक समीप पाता है। सारांश यह है कि चरित्र-प्रधान कहानियों मे चरित्रो के स्वाभाविक और सजीव चित्रण की ओर कहानी-लेखक को अधिक ध्यान देना चाहिए। क्योकि जब हमारे चरित्र इतने सजीव

और आकर्षक होते हैं कि पाठक अपने को उनके स्थान पर समझ लेता है, तभी उस कहानी से आनन्द प्राप्त होता है। अगर कहानी-लेखक अपने पात्रों के प्रति पाठक में यह सहानुभूति नहीं उत्पन्न कर सका तो वह अपने उद्देश्य मे असफल है

३-वर्णनप्रधान–कहानियाँ आजकल कम लिखी जाती हैं। ऐसी कहानियो मे लेखक परिस्थिति, काल और स्थान का वर्णन करने मे इतना तन्मय हो जाता है कि न तो वह घटनाओ के विकास की ओर ध्यान देता है न चरित्रों के चित्रण की ओर। स्वर्गीय चण्डी प्रसाद 'हृदयेश' की कहानियाँ अधिकतर वर्णन-प्रधान ही है। परन्तु ऐसी कहानियाँ बहुत ही नीरस जान पड़ती हैं।

४-भावप्रधान—कहानियाँ भी कभी-कभी मासिक पत्र पत्रिकाओंमें देखने को मिल जाती है। ऐसी कहानियो में लेखक मनोभावो के विश्लेषण और व्याख्या मे ही सारी कहानी समाप्त कर देता है। दार्शनिक विचारो के उच्च कोटि के पाठको के लिए ही ऐसी कहानियाँ मूल्य रखती है। साधारण पाठक इनमे विशेष आनन्द नहीं लेते।

तत्वों की प्रधानता के आधार पर कहानियो का वर्णन हो चुका। अब उन शैलियों का वर्णन करना चाहिए, जिनके आधार पर कहानियाँ लिखी जाती हैं। आधुनिक कहानियों के पढ़ने से विदित होता है, कि कुछ विशेष प्रणालियों पर अधिकतः कहानियाँ लिखी जाती हैं। ये प्रधानतया पाँच है।

१-ऐतिहासिक या साधारण सबसे अधिक प्रचलित प्रणाली है, जिसमे कहानीकार सम्पूर्ण कहानी एक इतिहासकार की तरह अन्य पुरुष के रूप में वर्णन करता है। जैसे, 'बेनी-माधव सिंह गौरीपुरगॉव के जमींदार और नम्बरदार थे' इत्यादि।

२-आत्मकथन-प्रणाली मे एकही पात्र सम्पूर्ण कहानी की कथा स्वय वर्णन करते हुए चलता है। ऐसी शैली की कहानियॉ पढ़ने से पाठक को मालूम होता है कि कहानी की घटनाऍ पात्र के जीवन मे प्रत्यक्ष अनुभूत है, अतः उसकी यथार्थता पाठक के हृदय को आकंपित तो अवश्य कर लेती है, परन्तु कहानी मे विकास का अवसर नहीं रह जाता। इस ढङ्ग की कहानियॉ आजकल हिन्दी मे अधिक लिखी जा रही है। उदाहरण के लिए प्रेमचन्द की 'शान्ति' नामक कहानी है जो इस प्रकार से प्रारम्भ होती है

'जब मै ससुराल आई तो बड़ी फूहड़ थी' इत्यादि।

३-संवादात्मक या कथनोपकथन-प्रणाली मे सारी कहानी वार्तालाप या संवाद के रूप मे लिखी जाती है। ऐसी कहा-नियो मे लेखक को संवाद की सरसता पर विशेष ध्यान देना पड़ता है। सजीवता के अभाव मे सारी कहानी नीरस हो जाती है। दूसरे वार्तालाप की योजना इस ढङ्ग की हो जिससे उसमें चरित्रो के विकास पर प्रकाश पड़ता जाय और कथा-वस्तु के विकास में भी सहायता हो। तभी संवादात्मक कहानियॉ सफल समझी जाती हैं।

हिन्दी में इस प्रणाली की कहानियाँ कम लिखी जा रही हैं।

४—पत्रात्मक-प्रणाली में सम्पूर्ण कहानी का विकास पत्रों के उत्तर-प्रत्युत्तर द्वारा ही होता है। कभी-कभी पूरा का पूरा उपन्यास तक पत्रात्मक प्रणाली में देखने को मिलता है, बेचनशर्म्मा उग्र का 'चन्द हसीनों के खुतूत' ऐसा ही उपन्यास है। प्रेमचंद की 'दो सखियाँ' नामक कहानी पत्रात्मक प्रणाली पर है। ऐसी कहानियाँ तभी सफल हो सकती हैं जब लेखक अपने पत्रों में कुछ भी व्यर्थ की बात न लिखे। इसलिए कहानी-लेखक के लिए यह आवश्यक है कि हर एक पत्र में पहले पत्र का समुचित सन्दर्भ और उत्तर देता जाय तथा पाठक की जिज्ञासा की उत्तरोत्तर वृद्धि करता जाय। इस प्रणाली की कहानियाँ हिन्दी में थोड़ी ही हैं।

५—डायरी-प्रणाली कुछ कहानी-लेखक नित्यकी डायरी का संकलन करके उसे कहानी का रूप दे देते हैं। पत्रात्मक प्रणाली की कहानियों की तरह डायरी-प्रणाली की कहानियोंके लिखनेमें भी कुशलता की आवश्यकता होती है। वर्णनशैली में सजीवता का होना परमावश्यक है। पिछले दिन की घटनाओं का उद्धरण देना जरूरी है, जिससे कहानी की गति में पाठक के मन में संदेह उत्पन्न हो जाने से शैथिल्य न आवे। प्रेमचन्द ने 'मोटेराम शास्त्री की 'डायरी' नाम से दो तीन कहानियाँ लिखी हैं, जो अत्यन्त मनोरञ्जक हैं। पर इस ढंग की कहानियाँ हिन्दी में बहुत कम हैं।

कहानी के विभाग

१ प्रारम्भ-कहानी के स्वरूपों और शैलियों की अधिक व्याख्या हो चुकी। अब कहानी के अन्तर्भागों पर भी कुछ कह देना आवश्यक है। प्रश्न हो सकता है कि कहानी लिखते समय लेखक किस प्रकार उसका आरम्भ, विकास और अंत करे जिससे कहानी को एक सफल रूप मिल सके। पुराने ढंग के कहानी-लेखक कहानियो का प्रारम्भ नीति या उपदेश पूर्ण वाक्यो की व्याख्या से करते थे। परन्तु आधुनिक कहानी-लेखक वार्तालाप, मनोदशा के उद्गार, चरित्र-विशेष के परिचय तथा प्रकृति या काल के दृश्य के साथ कहानी आरम्भ करता है। चाहे कैसे भी कहानी का प्रारम्भ किया जाय, उसमे पाठक की चित्त-वृत्ति को तुरत रमा देने की क्षमता होनी चाहिए, साथ ही साथ तीव्र वेग से अग्रसर होने की सामग्री होनी चाहिए।

२—मध्य भाग-कहानी के मध्य भाग का ध्येय घटना का सुरुचि पूर्ण विकास तथा पात्रो के चित्रण की सानुरूप योजना (Proportionate setting) करना है। पहाड़ी झरनेकी तरह इसमें प्रवाह और वेग होना चाहिए। इसमे अनावश्यक वर्णन का लाना कहानी के समुचित प्रवाह में बाधक होगा। कहानी-लेखक को इसी भाग मे पात्रो के मानसिक अंतर्द्वन्द्व तथा घटना के चढ़ाव-उतार का अवसर मिलता है। इसलिए उसे कथोपकथन को सार्थक और उपयुक्त बनाकर कहानी का चरम सीमा की ओर द्रुत गति से विकास करना चाहिए।

३-चरम सीमा या समाप्ति-कहानी की समाप्ति या चरम सीमा (Climax) कला की दृष्टि से सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। कहानी की चरम सीमा इतनी कौतूहल पूर्ण, प्रभावशाली ललित तथा हृदयग्राही होनी चाहिए जिसकी पाठक को तनिक भी आशा न हो। उसमें व्याख्या का अंश कम और संवेदना का अंश अधिक रहना चाहिए। उसकी समाप्ति में संकेत से जितना कार्य चलता है, उतना व्याख्या से नहीं। चतुर पाठकों के लिए संकेत ही काफी है

४-शीर्षक-कहानी का शीर्षक चित्ताकर्षक तथा उचित होना चाहिए। सम्पूर्ण कहानी का समन्वित प्रभाव (Unity of impressions) अभिव्यक्त करने की उसमें शक्ति होनी चाहिए। शीर्षक से ही पाठकों का ध्यान कभी-कभी कहानी की ओर खिंच जाना चाहिए। शीर्षक का चुनाव लेखक की कला-कुशलता का पूरा परिचायक होता है। उसे शीर्षक को इतना स्पष्ट भी न बनाना चाहिए, जिससे पाठक को कहानी पढ़ने की कोई आवश्यकता ही न रह जाय और न उसे इतना रहस्यमय बनाना चाहिए कि कहानी को बारम्बार पढ़ने पर भी उसका कोई भेद ही न मालूम हो।

कहानी के अंगों और उपादानों पर बहुत कुछ कहा जा चुका, परन्तु यह सिद्धान्त है कि विकास और परिवर्तन के कालों में साहित्य की किसी स्थायी प्रवृत्ति का पता लगाना कठिन हुआ करता है। प्रत्येक छोटी से छोटी अवधि के भीतर उसमें नई-नई प्रगतियों तथा आदर्शों के समावेश की सम्भावना रहती

आधुनिक प्रगति

है। साहित्य की धारा में कहानी को आए अभी एक शताब्दी भी न हुआ होगा, परन्तु अनेक कारणों से, जिनमें उसका आकार तथा थोड़े में मनोरंजन करना मुख्य है, इस कला में यथेष्ट रूप से विकास हुआ है। जिस लक्ष्य की पूर्त्ति साहित्य के काव्य, नाटक और उपन्यास आदि अंगों से हो रही है, उसी की पूर्त्ति कहानियाँ भी कर रही है। ऐसी कोई भी पत्र-पत्रिका न होगी जिसमे प्रायः दो एक कहानियाँ न पाई जाती हो। अब हम संसार के सभी प्रमुख लेखकों की रचनाएँ पढ़ते है। साहित्य के क्षेत्र मे प्रवेश करने के पूर्व नए लेखक कहानी-लेखन से हीं अपना साहित्यिक जीवन प्रारम्भ करने लगे है। इतना ही नहीं, बड़े-बड़े कवि और नाटककार भी अपनी कला की उच्चता का परिचय श्रेष्ठ कहानी लिखकर देते है। इसी लोकप्रियता के कारण कहानी साहित्य के अन्य विशिष्ट अंगो के समकक्ष बैठने का दावा कर रही है। परिणाम तथा उसकी अवाध विकसित गति को देखने से यह स्पष्ट विदित होता है कि वह काल के प्रसार के साथ अनेक कलेवरो को धारण करते हुए भी साहित्य की चिरस्थायी सम्पत्ति होगी।

दूसरा अध्याय

हिन्दीमें कहानी-साहित्य और प्रेमचन्द

भारतेन्दु के समय से ही हिन्दी साहित्य के और अंगों में स्फूर्ति आने के साथ ही साथ गद्य का भी विकास हो चला था। तत्कालीन बहुत से लेखक गद्य ही को साधन बना कर साहित्य के अनेक नव-अंकुरित अंगों के विकास की ओर अग्रसर हो रहे थे। पाश्चात्य सभ्यता की लहर बंगाल के फाटक से घुस कर समस्त देश में बड़े उद्दाम आवेग से प्रवाहित हो रही थी। अंगरेजी भाषा जनता की शिक्षा का माध्यम हो गई थी। अतः अपने साहित्य के साथ ही साथ अंगरेजी साहित्य का प्रचुर रीति से अध्ययन और अनुकरण होना प्रारम्भ हो गया था। सबसे पहला साहित्य, जिस पर विदेशी साहित्य का प्रभाव पड़ा, बंगला साहित्य था।

अंगरेजी की मासिक पत्र-पत्रिकाओं में छोटी कहानियाँ भी निकलती थीं, जिनका अनुवाद एवं अनुकरण बंगला समाचार पत्रों में होने लगा। ऐसी कहानियों का नाम बंगला में गल्प रखा गया था। इन्हीं कहानियों की देखा-देखी हिन्दीमें भी लेखक कहानियाँ लिखने लगे। पहले तो इन कहानियों का अनूदित रूप पाठकों के सम्मुख रखा गया, तत्पश्चात इनके आधार पर कहानियाँ लिखी जाने लगीं। वंग-भाषा से अनुवाद करनेवालों में इंडियन प्रेस के

मैनेजर गिरिजाकुमार घोष उल्लेखनीय है जो लाला पार्वतीनन्दन के नाम से कहानियाँ लिखने लगे। इसके पश्चात् बंग-महिला नाम का समाचार-पत्र आया जिसका सम्पादन मिरजापुर के प्रतिष्ठित बंगाली सज्जन बाबू रामप्रसन्न घोष की पुत्री करती थीं। इन्होंने बंगला की बहुत सी कहानियों का हिन्दी में अनुवाद तो किया ही साथ ही साथ मौलिक कहानियाँ भी लिखीं जिनमें 'दुलाई वाली' उल्लेखनीय है; जो सम्वत् १९६४ की सरस्वती (भाग ८ संख्या ५) में प्रकाशित हुई। परन्तु इसके पहिले भी पं० किशोरीलाल गोस्वामी की 'इंदुमती' नामक कहानी लिखी गई थी, जो हिन्दी की सर्वप्रथम मौलिक कहानी है और जो सम्वत् १९५७ की सरस्वती में निकली।

परन्तु अभीतक मौलिक कहानियों का दर्शन नहीं के बराबर था। सरस्वती में उनका जो श्री गणेश हुआ वह क्रमशः 'इन्दु' नाम की पत्रिका में विकसित हुआ, इसमें बाबू जयशंकर प्रसाद की 'ग्राम' नामकी पहली कहानी सम्वत् १९६९ मे निकली जो इतिवृत्तात्मक थी। इसके पश्चात् प्रसादजी ने अनेक कहानियाँ लिखी जिनका उल्लेख आगे किया जायगा। हास्य-रसके प्रमुख लेखक जी० पी० श्रीवास्तव की पहली कहानी सम्वत् १९६८ के 'इन्दु' में निकली। सम्वत् १९७० के इन्दु में राधिकारमणसिंह की "एक कानों में कगना' नाम की एक अत्यन्त भावुकतापूर्ण कहानी प्रकाशित हुई। इसी समय के लगभग श्री विश्वम्भरनाथ जिज्जा और विश्वम्भर शर्म्मा 'कौशिक' ने भी कहानी-लेखन प्रारम्भ

कर दिया। जिज्ञा जी की 'परदेसी' नामक कहानी १९१२ में प्रकाशित हुई। इसके बाद उनकी और भी कहानियाँ निकलीं जिनमें 'पञ्जाब मेल' बहुत ही लोकप्रिय है। 'कौशिक' जी की 'रक्षा-बन्धन' कहानी-कला की दृष्टि से बहुत ही उच्चकोटि की कहानी है।

सारांश यह है कि हिन्दी मे मौलिक कहानी लेखकों की बाढ़ सी आ गई। इसी समय पं० चन्द्रधर शर्म्मा 'गुलेरी' ने कहानी के क्षेत्र में पदार्पण किया। यद्यपि गुलेरीजी अकाल मृत्यु के कारण बहुत दिनों तक साहित्य सेवा न कर सके, और कहानी जगत् में तीन ही रत्नोंका दान कर सके, परन्तु कला की दृष्टिसे उनकी कहानियाँ उत्कृष्ट कोटि की हैं। 'उसने कहा था' नाम की कहानी, जो सं० १९७२ की सरस्वती में छपी, अपनी मौलिकता, रचना-सौष्ठव तथा स्वाभाविकता की दृष्टि से हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ कहानी कही जाती है।

गुलेरी जी

गुलेरीजी के अतिरिक्त और भी कहानी-लेखक साहित्य-क्षेत्र मे आए, जिनमें प्रेमचन्द, सुदर्शन, चण्डी प्रसाद हृदयेश, ज्वालादत्त शर्म्मा चतुरसेन शास्त्री, बेचनशर्म्मा उग्र और ऋषभ-चरण जैन आदि अधिक उल्लेखनीय हैं। कहानी-जगत् में प्रेम-चन्द जी ने युगान्तर उपस्थित कर दिया। अब तक कहानियों में कल्पना तथा ऐय्यारीका अधिक सम्मिश्रण रहता था। प्रेमचन्दजी

ने उसमें वास्तविकता (Realism) का समावेश किया। साथ ही साथ कहानियों के अधिकृत कथानक और पात्र देहाती और निम्नवर्ग से लेकर प्रेमचन्द ने स्वाभाविकता की अभिवृद्धि की। इसीलिये कथाजगत् में प्रेमचन्द जी ने सबसे अधिक ख्याति और लोक-प्रियता प्राप्त की। प्रेमचन्द जी के विषय में विस्तार-पूर्वक आगे वर्णन किया जायगा। कहानी-लेखकों के काल-क्रम के अनुसार यहाँ प्रेमचन्द का नामोल्लेख कर देना ही हमारा उद्देश था।

सुदर्शन और हृदयेश

प्रेमचन्द्रजी की तरह सुदर्शनजी भी उर्दू से ही हिन्दी क्षेत्र में आए। सुदर्शन जी पाश्चात्य कहानी-कला से प्रभावित होते हुए भी अपनी कहानियों में भारतीय आदर्शों की रक्षा करने में सफल हुए है। उदाहरण के लिए 'अमर जीवन' नाम की कहानी। चंडी प्रसाद 'हृदयेश' की कहानियों में कवित्व एवं कल्पना का आधिक्य रहता है। कवि होने के नाते उनकी कहानियों का वातावरण अलकार युक्त तथा चित्रात्मक होता है। परन्तु उनमें पात्र जीवित नहीं मालूम पड़ते और कथानक भी कल्पना की सीमातक पहुँच गया है। उदाहरण-स्वरूप उनकी 'शान्ति-निकेतन' नाम की कहानी ली जा सकती है।

यथार्थवादी ढंगकी कहानियोंकी ओर जिनमें कहीं-कहीं अश्लीलताका पुटपाक हो गया है उग्रजी अग्रसर हुए। भाषा पर उनका अधिकार है, उनकी शैली भी ओज-पूर्ण है। वाता-

वरण का चित्रण करने में उग्र जी तन्मय हो जाते हैं। उग्र जी सामाजिक जीवन का यथार्थ पक्ष लेते यथार्थवादी कहानियाँ हैं। परन्तु यथार्थ होते हुए भी समाजके नग्न और अश्लील अंग को ही उन्हों ने लिया है। यह ठीक है कि इस नग्न चित्रण से उन्होंने समाज की बुराइयों की ओर पाठक का ध्यान आकर्षित कर दिया है, परन्तु यह एकांगी है, और सत्साहित्यमें उसकी गणना होने में संदेह है। परन्तु जहाँ कहीं अश्लीलता नहीं है, वहां उनकी कहानियाँ अच्छी बन पड़ी है। कहानी-साहित्य में उनका एक विशिष्ट स्थान है, और उनकी कहानियाँ बहुत ही लोक-प्रिय हुई हैं।

यद्यपि हिन्दी-कहानी-क्षेत्र में हास्य और व्यंग्य सम्बन्धी कहानियों की कमी है, तो भी इसका सर्वथा अभाव नहीं है। जी० पी० श्रीवास्तव ने हास्यरस की अनेक हास्य और व्यंग्यकी सुन्दर कहानियाँ लिखी है। यद्यपि उनमें कहानियाँ कला का समुचित दर्शन नहीं होता। भगवतीचरण वर्मा, बदरीनाथ भट्ट, अन्नपूर्णानन्दजी, हरिशंकर शर्मा, कृष्णदेव प्रसाद गौड़ 'बेढब' आदि ने हास्य और व्यंग सम्बन्धी अनेक कहानियाँ लिखी है। इनकी रचनाओं में यद्यपि कहानीकला का प्रचुर विकास नहीं हुआ है, तथापि पाठकोंकी दुनियाँ में उनका बड़ा आदर है। भट्टजी की टटोलू राम टलास्त्री, अन्नपूर्णाजी की 'परीक्षा' बेढ़ब का 'बनारसी इक्का' आदि सुन्दर कहानियां हैं।

जैनेन्द्र कुमार—आधुनिक कहानी-लेखकों में जैनेन्द्र कुमार का भी एक विशिष्ट स्थान है। यद्यपि जैनेन्द्र की शैली में उतनी तन्मयता नहीं रहती, और उनका पात्र-चित्रण भी उतना सफल नहीं होता, तथापि पात्रो से उनकी एक अपूर्व सहानुभूति रहती है। इसीसे उनकी कला का विशेष आदर है।

चतुरसेन शास्त्री—सफल कहानी-लेखकों में श्रीचतुरसेन शास्त्री उल्लेखनीय है। ऐतिहासिक कथाओ में कल्पित आदर्श का समावेश करके कहानियाँ लिखने की जो रीति यूरोप के कथाकार व्यवहार में लाते रहे, उसी प्रथा का चतुरसेन जी ने हिन्दी में अनुसरण किया है। भारतीय वीर-गाथाओ का उन्होंने अच्छा अध्ययन किया है। अपनी कहानियो के लिए वे सुन्दर कथानक निकाल लेते है। कहानियो का वर्णन आपका बड़ा सजीव और आकर्षक होता है। 'दे खुदा की राह पर' हिंदू-मुस्लिम मेल-जोल को ध्यान मे रख कर चतुरसेन जी की लिखी हुई एक बड़ी सुन्दर कहानी है। इसी प्रकार उनकी अन्य कहानियाँ भी कला की दृष्टि से आदरणीय है।

घटना-प्रधान कहानियो के स्थान पर आजकल ऐसी कहानियाँ अधिक लिखी जा रही है जिनमे चरित्रो के मनोवैज्ञानिक संघर्ष का सफल चित्रण रहता है। आज हिन्दी-साहित्य-क्षेत्र में सबसे अधिक प्रचार कहानियो का ही है। परन्तु कहानी-लेखको में अभी सभी की कला में यथेष्ट विकास नहीं हुआ है, किंतु कुछ कहानी-लेखक ऐसे अवश्य हैं जिन्होंने विशेष सफलता प्राप्त

कर ली हैं। इनमें अज्ञेय, भारतीय, मोहनलाल जी महतो, निराला जी, रामेश्वर शुक्ल अंचल, ठाकुर श्रीनाथ सिंह, वाचस्पति पाठक, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, प्रतापनारायणजी श्रीवास्तव, ऋषभचरण जी जैन, यशपाल जी, वीरेन्द्रकुमार जी, व्रजेन्द्रनाथ-गौड़, पहाड़ी जी इत्यादि अपनी अपनी प्रतिभा से कहानी-कला के विभिन्न क्षेत्रों की पुष्टि कर रहे है।

स्त्री कहानी लेखिकाएँ—शिक्षा के प्रसार के कारण स्त्रियों में भी कहानी-लेखन का अधिक प्रचार हो गया है। इससे अधिक मनोरञ्जन का कोई दूसरा सत्साहित्य नहीं है, जिससे थोड़े समय में आनन्द प्राप्त किया जा सके। यद्यपि इस क्षेत्र में कहानी-लेखिकाओं की कमी है, परन्तु कुछ महिलाएँ अच्छी कहानी लिख लेती है। प्रेमचन्द जी की कहानीकला का उनकी धर्मपत्नी श्री शिवरानी देवी पर अच्छा प्रभाव पड़ा है। स्त्री कहानी-लेखिकाओं में उनका प्रमुख स्थान है। वे गार्हस्थ्य-जीवन का बड़ा ही विशद और हृदयग्राही चित्रण करती हैं। श्रीमती तेजरानी 'दीक्षित' जीवन का करुण चित्र बड़ी सफलता से अंकित करती हैं। श्री सुभद्रा कुमारी कवियित्री के अतिरिक्त सफल कहानी-लेखिका भी है। इसी प्रकार ऊषादेवी मित्रा भी रोचक कहानियाँ लिखती हैं। इन देवियों के अतिरिक्त बहुत सी अन्य लेखिकाएँ भी हिन्दी-जगत् को सुन्दर कहानियाँ दिन प्रतिदिन भेंट कर रही हैं।

कहानी-लेखकों का यह तांता बड़े उद्दाम वेग से बढ़ता जा रहा है जो हिन्दी के कहानी-क्षेत्र की समृद्धि का द्योतक है। यूरोप

के उत्कृष्ट कहानी-लेखकों की कहानियों का आज अनुवाद हो रहा है और हिंदी की मौलिक कहानियाँ आज उनका टक्कर लेने लगी हैं; यद्यपि दोनों देशों के साहित्यिक और सांस्कृतिक उद्देश्य में महान् विभिन्नता है। एक वस्तुवाद का प्रेमी है दूसरा अध्यात्मवाद का, एक के यहाँ साहित्यका उद्देश्य केवल मनोरञ्जन है, दूसरे के यहाँ समाज तथा राष्ट्र का नैतिक उत्थान। परन्तु इतना होते हुए भी हम बड़े वेगसे यूरोप के साहित्य का अनुकरण कर रहे है। कहानी-क्षेत्र में भी आज कोरी घटनाओं के निदर्शन के स्थान पर पात्रों का मनोवैज्ञानिक संघर्ष एवं समाज के दलित, पीड़ित, शोषित निम्नवर्ग का अधिक चित्रण होने लगा है। हमारा कहानी-साहित्य प्रगतिशील हो चला है। आज दिन समाज की प्रवृत्ति व्यव-सायात्मिका हो चली है, अतः कहानी केवल मनोरंजन का ही आदर्श लेकर अधिक सफल हो सकती है। परन्तु इतना होते हुए भी हम उसके साहित्यिक महत्त्व को पीछे नहीं रख सकते।

वैसे तो आज सफल कहानी-लेखकों की भी हिन्दी-क्षेत्र में आशातीत संख्या है, और सब की कहानियाँ चाव से पढ़ी जाती है, पर इन कहानी-लेखकों में ऐसे बहुत कम, क्या इने-गिने होंगे, जिन्होंने कहानी-कला के सभी अङ्गों को लेते हुए उसे एक अमर साहित्यिक रूप में परिणत किया हो तथा जिसने कहानी के क्षेत्र में क्रान्ति उपस्थित कर दी हो। ऐसे लेखकों में प्रेमचन्द जी प्रमुख थे, जिनकी कहानी-कला की व्याख्या हमारी इस पुस्तक का ध्येय है।

उपर्युक्त कहानी-लेखकों में प्रेमचन्द, प्रसाद, हृदयेश, उग्र

तथा भारतीय जी आदि प्रधान, इसलिए कहे जाते हैं कि इन लोगों ने अपनी प्रतिभा और मौलिकता से कहानी-क्षेत्र में अलग-अलग धाराओं को प्रवाहित किया है, और उनको आदर्श मान कर, या उनके पथ का अवलम्बन करके बहुत से लेखकों ने कहानियाँ लिखी है। इसी प्रसंग में इन लेखकों की विशिष्ट धाराओं का सिंहावलोकन कर लेना समीचीन होगा।

प्रसाद जी का कवित्वमय तथा भावप्रधानवर्ग—इस वर्ग के प्रवर्त्तक 'प्रसाद' जी है और इसके अनुयायी रायकृष्णदास से लेखक हैं। इस धारा की कहानियों में कथानक कम, भावुकता और कवित्व अधिक रहता है। कल्पना या कवित्व की उड़ान नाटक के स्वगत भाषणों तथा काव्य में तो उचित है, परन्तु कहानी के छोटे आकार में, जहाँ पात्र, घटना तथा भाषा का अत्यंत परिमित स्वरूप रखकर एक तीव्रतम संवेदना उत्पन्न करने की आवश्यकता रहती है, कवित्व का यह मौन आलाप अत्यन्त असङ्गत जान पड़ता है। इसके अतिरिक्त इन कहानियों की भाषा बिलकुल अनुपयुक्त है। 'प्रसाद' के कहानी के पात्र उनके नाटक के पात्रों की भाँति गम्भीर काव्यमय भाषा का प्रयोग करके दार्शनिक से मालूम होते हैं। ऐसे स्थलों पर उनकी कहानियों में कृत्रिमता तथा अस्वाभाविकता आ गई है। 'आकाश दीप' नामक कहानी का एक अंश लीजिए :—

'बुद्धगुप्त ने चम्पा से पूछा—तुम्हारा घर कहाँ है ?'

'जाह्नवी के तट पर, चम्पा नगरी की एक क्षत्रिय बालिका

हूँ। पिता इसी मणिभद्र के यहाँ काम करते थे, माता का देहावसान हो जाने पर मै भी पिता के साथ नाव पर ही रहने लगी, तुम्हारे आक्रमण के समय मेरे पिता ने सात दस्युओ को मारकर जल समाधि ली। एक मास हुआ मैं इस नील नभ के नीचे नील जलनिधि के ऊपर एक भयानक अनन्तता मे निस्सहाय हूँ।' चम्पा की आँखे निस्सीम प्रदेश में निरुद्देश्य थीं, धवल अपांग में बालकों के सदृश विश्वास था।

निस्सीम प्रदेश तथा अनन्त लोक का चित्र खींचने के लिए, जिसका अवकाश कविता के क्षेत्र मे अधिक होता है, यह भाषा चाहे कितनी ही उचित हो, परन्तु कहानी के क्षेत्र में, जहाँ मानव-समाज के दैनिक जीवन की झलक दिखानी पड़ती है, इस भाषा से बिलकुल काम नहीं चल सकता। यही कारण है कि प्रसाद जी की कहानियाँ अधिक लोकप्रिय नही हुई। उनकी ममता, गुंडा, बिसाती, समुद्र-संतरण आदि कहानियाँ, जहाँ कल्पना और भावुकता का आधिक्य नहीं है, बहुत ही सफल तथा हृदयग्राही हुई हैं। परन्तु इस वर्ग की अधिकांश कहानियाँ विशेष लोकप्रिय और समादृत नहीं हुई।

'हृदयेश' का दृश्य-चित्र युक्त अलंकृत वर्ग—इस वर्ग के प्रसिद्ध लेखक चडी प्रसाद जी हैं, और जिसके ढंग पर बिन्दु, ब्रह्मचारी आदि लेखक लिख रहे है। इस धारा की कहानियाँ भी भावप्रधान होने के कारण 'प्रसाद'-वर्ग की कहानियो से मिलती-जुलती है। 'प्रसाद' जी की कहानियों मे तो कुछ कथानक

भी रहता है, किन्तु 'हृदयेश' की कहानियों में तो उसकी छायामात्र रहती है। जैसा कि इस वर्ग के नाम से ही प्रकट है, इस वर्ग की कहानियों में किसी परिस्थिति या प्रकृति-दृश्य का एक अलङ्कार-पूर्ण वर्णन रहता है; जो कृत्रिम जान पड़ता है। उदाहरण के लिए 'हृदयेश जी' के 'शान्ति-निकेतन' का एक अंश लीजिए—

'पारिजात-निकुञ्ज में स्फटिक-शिला पर बैठी हास्यमुखी कल्पना ने विषाद-वदना चिन्ता के चिबुक को कर कमल से उठाकर कहा—'बहन! चलो! इस चन्द्रिका-धौत गगन-मण्डल में विश्राम करें।''

चिन्ता ने अनमना होकर उत्तर दिया—'ना बहन! मुझे इस निकुञ्ज की सघन छाया ही में विश्राम मिलता है।'

उपर्युक्त उद्धरण में अलङ्कृत-दृश्य चित्रों की ही भरमार है। इसके अतिरिक्त इनकी कहानियों में मानव-जीवन के किसी उद्देश्य, जैसे सेवा, धर्म, आदि की दार्शनिक व्याख्या अधिक होती है, समाज तथा व्यक्ति का चित्रण प्रायः नहीं रहता। साथ ही साथ दार्शनिक भाषा एवं शैली का आश्रय ले लेने से इन कहानियों की गति बहुत ही शिथिल और भद्दी हो जाती है, जिससे पाठक का हृदय ऊबने लगता है। परिणामतया इस वर्ग की कहानियाँ भी कम लोकप्रिय हुईं।

प्रेमचन्द जी का घटना-प्रधान वर्ग—इस शैली के अनुकरण पर हिन्दी के प्रायः अधिकांश लेखक कहानियाँ लिख रहे हैं। यद्यपि इस वर्ग की कहानियों का प्रसार प्रेमचन्द से पहले ही

गुलेरी जी तथा सुदर्शन जी कर चुके थे, परन्तु चूँकि प्रेमचन्द जी ने इस धारा को विकसित किया, अतएव इसका नामकरण उन्हीं के नाम से हुआ है। यद्यपि इस वर्ग का नाम घटना-प्रधान कहानियो का वर्ग है, तथापि इस वर्ग की कहानियो में भावों तथा घटनाओं का सामंजस्य रहता है। समाज और जीवन का सर्वांगीण सूक्ष्म चित्रण करने के कारण इस वर्ग की कहानियाँ सबसे अधिक लोक-प्रिय हुईं। इस वर्ग की कहानियों के लेखको में प्रेमचन्द ही सब से प्रसिद्ध है।

पहले प्रेमचन्द जी उर्दू में कहानी और उपन्यास लिखा करते थे जहाँ इनकी भाषा खूब मॅंज चुकी थी। समकालीन अन्य हिन्दी-प्रेमियों ने इन्हें हिन्दी की ओर झुकाया, और इनकी उर्दू-कहानियों का हिन्दी मे इन्हीं से अनुवाद कराके तथा उन्हें पत्र पत्रिकाओं में स्थान देकर इन्हें प्रोत्साहित किया। कालान्तर में अभ्यास के पश्चात् प्रेमचन्द हिन्दी मे लिखने लगे। कहानी-कला के रचना-क्रम से वे परिचित तो थे ही, उनकी भाषा और उनके भाव भी मॅंज चुके थे। कुछ ही काल पश्चात् इन दोनों बातो में पूर्ण परिपक्वता आ गई। सबसे प्रधान विशेषता जो इन कहानियों की है, वह है भारतीय समाज के विभिन्न वर्गों, प्रधानतया ग्रामीणों का जीता-जागता चित्र। ग्रामीण तथा निम्न-वर्ग के जीवन का इतना सूक्ष्म, और हृदयग्राही चित्र तो हिन्दी का कोई भी लेखक प्रेमचन्द जैसा न कर सका है। परन्तु इससे भी बड़ी एक विशेषता प्रेमचन्द जी की प्रतिभा की मौलिकता का परिचायक थी।

पाश्चात्य कथा-साहित्य से प्रभावित होते हुए भी अपने कहानियों के कलेवर में भारतीय आत्मा को सन्निहित करने की उनमें प्रतिभा थी, जिससे उन्होंने अपनी कहानियों को साहित्य की अमर कृति के रूप में परिणत कर दिया। संक्षेप में एक उत्कृष्ट कोटि के कहानी-लेखक के सभी गुण इनमें उपस्थित थे। इनमें हृदय था, सूक्ष्म परख की शक्ति थी, रचना-कौशल था, और सबसे प्रधान वस्तु थी लगन। यही अन्तिम वस्तु संसार के प्रत्येक कलाकार में पाई जाती है। परिणामतया प्रेमचन्द ने भारतीय कहानी-साहित्य की धारा को बदल दिया, जिसका बहुत से होनहार कहानी-लेखक अनुसरण करने लगे।

प्रेमचन्द्र जी की कहानियाँ

उर्दू कहानियाँ—

अ—१ अकबर २ अमृत ३ अभागिन ४ अलहेदगी ५ अंधेर ६ अमावस की रात ७ अनाथ लड़की (ज़माना में निकलीं)।

आ—८ आकूब ९ आशियाँ बरबाद १० आंसुओं की होली ११ आक़ोत १२ आत्माराम १३ आलेहा १४ आह बकश १५ आलिम के अमल।

इ—१६ इस्लाम १७ इन्तकाम १८ इस्तीफा १९ इन्सान का मुक़द्दस फ़र्ज़ २० इल्ज़ाम २१ इम्तहान २२ इन्साफ की पुलिस २३ इश्के दुनियाँ और हुब्बे वतन।

ई—२४ ईमान का फैसला (जमाना १९१९ में निकली)।

उ—२५ उफ़्फ़ ।

क—२६ कातिल २७ कज़ाकी २८ कशमकश २९ कुर्बानी ३० कर्मों का फल ३१ कटफारा ३२ कौम का खादिम ३३ कातिल माँ ३४ कश्मये इन्तक़ाम ३५ कामना ३६ कर्बला ।

ख—३७ खूने हुरमत ३८ खाना ३९ खून सुफेद ४० खंजरे वफ़ा ४१ खाके परेशाँ ४२ खाने बरबाद ४३ खून का कहा ।

ग—४४ ग़म मदारी ४५ गुल्ली डण्डा ४६ गैरत की कटारी ४७ गुनाह का अग्निकुण्ड ।

घ—४८ घड़ी ४९ घासवाली

च—५० चकमा ५१ चोरी ।

ज—५२ जुलूस ५३ जंजीरे हवश ५४ जुगनू की चमक ५५—जिहाद ५६ जन्नत की देवी ५७ जेवर का डब्बा ५८ जादे राह ५९ जैक ।

ड—६० डामुल का कैदी ६१ डिक्री के रुपये ।

त—६२ तौबा ६३ ताजियाने ६४ तालीफ कुलूब ६५ तहजीब का राज़ ।

द—६६ दीनदारी ६७ दफ्तरी ६८ दुर्गा का मन्दिर ६९ दारोगा का सार गुदश्त ७० दो भाई ७१ देवी ७२ दो सखियाँ ७३ दुनिया का सबसे अनमोल रतन ७४ दोनों तरफ से ७५ दस्तगैब ।

ध—७६ धोखा ।

न—७७ नमक का दारोगा ७८ निगाहे नाज़ ७९ नेकबख्ती के साजियाने ८० नजूले बर्क ८१ नई बीवी ८२ नोक-झोंक ८३ नशा।

प ८४ पछतावा ८५ पालागन ८६ पंचायत ८७ पूस की रात

फ—८८ फातिहा ८९ फतह ९० फलसफ़ी की मुहब्बत ९१ फ़िक्रे दुनिया ९२ फिर से जान ९३ फरेब।

ब—९४ बड़े भाई साहब ९५ बेगराज मुहाशिव ९६ बासी भात में खुदा का चारा ९७ बड़े घर की लड़की ९८ बाँका जमीदार ९९ बूढ़ी काकी १०० बैंक का दीवाला १०१ बागे शहद १०२ बोहनी १०३ बन्द दरवाजा १०४ बद नसीब १०५ बड़े बाबू १०६ बलमें परेशाँ १०७ बेटी का धन १०८ बीवी का शौहर।

भ—१०९ भूत ११० भाड़े का टट्टू।

म—१११ मंत्र ११२ सँगता ११३ मनावन ११४ मरहम ११५ मर्जे मुबारक ११६ मुरीदी ११७ मंजिले मकसूद ११८ मसालये हिदायत ११९ मजबूरी १२० माँ १२१ मजारे उल्फत १२२ मिस पद्मा १२३ मासूम बच्चा १२४ मालकिन १२५ मुफ्ते काम दासान १२६ मौत और जिन्दगी १२७ मिलाप १२८ मेहरे पिदर १२९ मोअम्मा १३० मूढ़ १३१ मापे तफरीह १३२ मन्दिर व मसजिद १३३ मस्तयार १३४ मन्दर।

य—१३५ यही मेरा वतन है।

र—१३६ रानी सारंधा १३७ राज-हठ १३८ राजा हरदौल १३९ राहे खिदमत १४० राजपूत की बेटी १४१ रामलीला

१४२ राहे निजात १४३ रोशनी १४४ रूठी रानी १४५ रूहे हयात।

ल—१४६ लाटी १४७ लानत १४८ लैला १४९ लाल फीता।

व—१५० वाजियाह १५१ विक्रमादित्य १५२ वफ़ा की देवी १५३ विक्रमादित्य का तेगा।

श—१५४ शालये हुस्न १५५ शेरपुर ग़रूर १५६ शिकारी राजकुमार १५७ शिकवा शिकायत १५८ शांति १५९ शेख मक़मूर १६० शामते आमाल १६१ शतरंज के खिलाड़ी।

स—१६२ स्वांग १६३ सौतेली माँ १६४ सिर्फ़ एक आवाज १६५ सौत १६६ सीताग्रह १६७ सुहाग का जनाजा १६८ सज़ा १६९ सवासेर गेहूँ १७० सुलेमातम् १७१ सैरे दरवेश।

ह—१७२ हज्जे अकबर १७३ हुस्ने जिन १७४ हसरत १७५ होली की छुट्टी १७६ हकीकत।

त्र—१७७ त्रिया चरित्र १७८ त्रिशूल।

प्रेमचन्द जी की उपर्युक्त उर्दू-कहानियों में से अधिकांश उर्दू के 'जमाना' नामक पत्रिका में निकल चुकी है। इन कहानियों के देखने से पता चलता है कि उर्दू-साहित्य का कहानी भंडार प्रेमचन्द जी ने ही समृद्धिशाली बनाया है, जिसका उसे सर्वदा ऋणी रहना पड़ेगा। उर्दू कहानियों के विषय में अगले अध्याय में लिखा जायगा। अधिकांश उर्दू कहानियों का हिन्दी में भी प्रकाशन हो गया है। अब नीचे हिन्दी कहानियों की तालिका दी जाती है।

द—७३ दंड ७४ दूध का दाम ७५ दो बैलों की कथा ७६ दिल की रानी ७७ दीक्षा ७८ दो कब्र ७९ दारोगा जी ८० दो वृद्ध पुरुष ८१ दयालु स्वामी ८२ दयामय की कथा ८३ दो बहने ८४ दफ्तरी ८५ दुस्साहस ८६ दुर्गा का मन्दिर ८७ दक्षिणी अफ्रीका मे शेर का शिकार ८८ दो भाई ८९ दो सखियाँ ९० दुर्गादास।

ध—९१ धर्म शंकर ९२ धिक्कार ९३ धोखा ९४ ध्रुव-निवासी

न—९५ नशा ९६ न्याय ९७ नाक का मार्ग ९८ निर्वासित ९९ नैराश्य-लीला १०० नैराश्य १०१ नाग-पूजा १०२ नमक का दारोगा १०३ निमंत्रण १०४ नवी का नीति-निर्वाह १०५ नेंडर।

ठ—१०६ ठाकुर का कुआँ।

ड—१०७ डामुल का कैदी १०८ डिक्री के रुपये १०९ डपोर-संख ११० डिमॉस्ट्रेशन।

प—१११ पूस की रात ११२ परीक्षा ११३ पति से पत्नी ११४ प्रेरणा ११५ प्रेम का उदय ११६ पाप का अग्निकुंड ११७ पछतावा ११८ प्रेम में परमेश्वर ११९ पशु से मनुष्य १२० पंच परमेश्वर १२१ पंडित मोटेराम की डायरी भाग ३ १२५ पागल हाथी १२६ पालतू भालू १२७ पिसनहरिया का कुआँ १२८ पूर्व संस्कार १२९ पिस्तौल का निशाना १३० प्रतिशोध १३१ प्रेम-निर्वाह १३२ प्रेम-सूत्र १३३ प्रायश्चित १३४ पुत्र-प्रेम १३५ प्रारब्ध।

फ—१३६ फातिहा।

डैगपाल १९८ रोग और मृत्यु १९९ राज्य-भक्ति २०० रहस्य २०१ रामलीला ।

ल—२०२ लाग-डाँट २०३ लांछन २०४ लाटरी २०५ लैला २०६ लेखक २०७ लाल फीता २०८ लोकमत का सम्मान ।

व—२०९ विध्वंस २१० वेश्या २११ विनोद २१२ विद्रोही २१३ वहिष्कार २१४ विक्रमादित्य का तेगा ।

श—२१५ शिकार २१६ शतरंज के खिलाड़ी २१७ शराब की दूकान २१८ शेर व लड़का २१९ शिकारी राजकुमार २२० शूद्रा २२१ शांति ।

स—२२२ समर-यात्रा २२३ सती २२४ सद्गति २२५ सभ्यता का रहस्य २२६ सच्चाई का उपहार २२७ स्वामिनी २२८ सुभागी २२९ स्त्री और पुरुष २३० स्वर्ग की देवी २३१ सत्याग्रह २३२ सुख त्याग में है २३३ सूरत का चायखाना २३४ शंखनाद २३५ सुहाग की साड़ी २३६ सत्व-रक्षा २३७ सौत २३८ सज्जनता का दंड २३९ सवा सेर गेहूँ २४० सुजान भगत २४१ साँप की मणि २४२ सेवा-मार्ग २४३ स्मृति का पुजारी २४४ सैलानी २४५ सुहाग का शव २४६ सौभाग्य के कोड़े ।

ह—२४७ होली का उपहार २४८ हार की जीत ।

क्ष—२४९ क्षमा २५० क्षमा-दान ।

तीसरा अध्याय

प्रेमचन्द जी में विकास और उनका वर्गीकरण

द्वितीय अध्याय में एक स्थल पर यह कहा जा चुका है कि प्रेमचन्द पहले उर्दू में लिखा करते थे। इसका कारण यह था कि कायस्थ परिवार में जन्म लेने के कारण कायस्थों की मुगलों के समय से ही चली आती हुई परिपाटी के अनुसार इनकी भी शिक्षा फारसी और उर्दू में हुई थी। जिसका व्यक्तित्व पर गहरा प्रभाव पड़ा था। परिणामतया प्रेमचन्द की लेखनी पहले उर्दू की ओर उन्मुख हुई, और इन्होंने बहुत सी कहानियों और उपन्यासों को लिखा है। अपने 'जीवन सार' नामक लेख में प्रेमचन्द ने स्वयं इसका उल्लेख किया है, जिसका उद्धरण यहाँ समीचीन होगा।

'मैंने पहले पहल १९०७ में गल्प लिखना शुरु किया। डाक्टर रवीन्द्रनाथ की कई गल्पें पढ़ी थीं और उनका उर्दू अनुवाद भी कई पत्रिकाओं में छपवाया था। उपन्यास तो मैंने १९०१ से लिखना शुरु कर दिया था, मेरा एक उपन्यास १९०२ में और दूसरा १९०४ मे निकला लेकिन गल्प १९०४ से पहले मैंने एक भी न लिखा। मेरी सबसे पहली कहानी का नाम था 'संसार का सबसे अनमोल रत्न'। वह १९०७ के 'जमाना' में

छपी, उसके बाद चार पाँच कहानियाँ और लिखीं पाँच कहानियों का संग्रह १६०६ में 'रोज़े वतन' के नाम से छपा। उस समय 'वंग-भंग' का आन्दोलन हो रहा था। कांग्रेस मे गर्म दल की सृष्टि हो चुकी थी, इन पाँच कहानियों में स्वदेश-प्रेम की महिमा गाई गई थी।"

यह 'रोज़े वतन' आपकी कहानियों की पहली पुस्तक उर्दू में निकली जिसमें स्वदेश-प्रेम का राग अलापा गया था, ऐसे समय में जब बृटिश सरकार इसके विरुद्ध थी। परिणाम यह हुआ कि सरकार ने यह पुस्तक जब्त कर ली, और इसकी १५०० प्रतियाँ जला दी गईं साथ ही साथ लेखक को पुनः ऐसा न लिखने का कड़ा आदेश भी मिला। इस पुस्तक मे इन्होंने उपनाम 'नवाब-राय' रक्खा था। अब लेखक ने अपना यह उपनाम बदल कर प्रेमचन्द रक्खा। इस उपनाम से पहली पुस्तक 'प्रेम-पचीसी' उर्दू में छपी। लोक-प्रिय होने के कारण जनता में इनकी माँग बढ़ती गई और क्रमशः इन्होंने और उपन्यास लिखना प्रारम्भ कर दिया। 'रोज़े वतन' और 'प्रेम-पचीसी' के पश्चात् इनके और भी कहानी संग्रह उर्दू में निकले, जैसे 'खाके परवाना' 'प्रेमबतीसी' 'प्रेमचालीसा' 'फिर दोसये ख्याल' 'जादेराह' 'दूध की कीमत' 'वारदात' 'परवाज ख्याल' "खाके ख्याल' 'नजात' आदि।

उर्दू की इन कहानियों में प्रेमचन्द ने समाजिक जीवन के विभिन्न अंगों का बड़ा ही मार्मिक और यथातथ्य चित्र खींचा

है। परन्तु सबसे बड़ी विशेषता उसमें वर्णन की स्वाभाविकता तथा भाषा की सफाई की है। ऐसी मजी हुई मुहाविरेदार भाषा बड़े कुशल उर्दूदां भी न लिख सकते थे। उदाहरण के लिए 'नसीहत' कहानी का एक अंश देखिए:—

'शर्म्मा जी बोले क्या यह कोई तहक़ीक़ात है या महज़ गश्त।' दारोगा जी बोले, 'महज गश्त, आज कल किसानो के फसल के दिन है, यही ज़माना हमारी फसल का है. शेर को भी तो मॉद में वैठे-बैठे शिकार नहीं मिलता, जंगल मे घूमता है, हम भी शिकार के तलाश में हैं, किसी पर खुफिया-फरोसी का इल्जाम लगाया, किसी को हमल-हराम का झगड़ा उठाकर फाँसा, अगर हमारे नसीब से डाका पड़ गया तो हमारी अँगुली घी मे समझिए। डाकू तो नोच खसोट कर भागते हैं, असली डाका हमारा पड़ता है। आस-पास के गावों मे झाड़ू फेर देते हैं। खुदा से शबोरोज़ दुआ करते है, कि या परवर दिगार! कहीं से रिज़क भेद दे। अगर देखा कि तकदीर पर साकिर रहने से काम नहीं चलता तो तदबीर से काम लेते हैं। जरा से इशारे की जरूरत है. डाका पड़ने में क्या देर लगती है। आप मेरी साफगोई पर हैरान होते होगे और लुत्फ यह कि मेरा शुमार जिले के निहायत होशियार कारगुजार, दयानतदार सब इन्सपेक्टरों में है।"

सारांश यह है कि प्रेमचन्द ने जिस चलती फिरती मुहाविरेदार भाषा का प्रयोग अपनी उर्दू-कहानियों में किया, वह शायद

उर्दू को पहले न मिली हो। यह प्रेमचन्द की ही देन थी, जिसके लिये उर्दू-साहित्य इनका आजन्म ऋणी रहेगा।

एक उर्दू लेखक को हिन्दी में लिखना प्रारम्भ करते समय जो कठिनाइयाँ उपस्थित होती वे ही प्रेमचन्द के सम्मुख उपस्थित हुई। इनकी आरम्भिक हिन्दी की कहानियाँ जो 'सप्त सरोज' तथा 'नव निधि' में संग्रहीत हुई हैं, उन्हें पढ़ने से स्पष्टतः पता चल जाता है कि किस प्रकार इनकी आरम्भिक हिन्दी उर्दू से बहुत अधिक प्रभावित है। वैसे तो इनकी समस्त कहानियों की शैली उर्दू-मिश्रित है, पर आरम्भिक कहानियों में तो उर्दू के शब्द, भाव और सीधे-सीधे मुहाविरे तक रख दिये गए हैं जिनका हिन्दी में प्रयोग नहीं होता। जैसे सप्त-सरोज की उपदेश नामक कहानी से—एक हिन्दू पात्र के मुख से सुनिए :—

'जब किसी सेठ जी या वकील के *दरे दौलत पर हाजिर* हो जाऊँ'। यहाँ एक में ऐसे मुहाविरे का प्रयोग है, जो हिन्दी में शायद ही होता है इसी भाँति 'नव-निधि' संग्रह के 'राजा हादौल' नामक कहानी में फाल्गुन का वर्णन करते हुए लिखते हैं कि :—

'फाल्गुन का महीना था, अबीर और गुलाब से जमीन लाल हो रही थी, कामदेव का प्रभाव लोगों को *भड़का रहा था*, रबी ने खेतों में *सुनहला फर्श बिछा रक्खा था* और खलिहानों में *सुनहले महल उठा दिये थे*। सन्तोप इस सुनहले फर्श पर *अठलता फिरता था*, और निश्चिन्तता इस सुनहले महल में *तानें अलाप रही थी*। इन्हीं दिनों दिल्ली का *नामवर फिकैत* कादिर खाँ ओरछे आया।'

उपर्युक्त उद्धरण से पता चलता है कि किस प्रकार प्रेमचन्द्र-हिन्दी कहानियों में भी अभी अपनी पुरानी उर्दू भाव-व्यंजना व मुहाविरेदाजी का बलात् प्रयोग कर रहे थे, जो हिन्दी पाठकों के लिए सर्वथा अनुपयुक्त थी। ऐसा होना स्वाभाविक था क्यो कि उनका पूर्व-शिक्षा गत-संस्कार एक दम नहीं मिट सकता था। उर्दू का यह अत्यधिक प्रभाव इनकी सभी आरम्भिक कहानियो में पाया जाता है, जो आगे चल कर कम होता गया।

उर्दू के अत्यधिक प्रभाव के साथ ही साथ इन आरम्भिक हिन्दी-कहानियो की वर्णन-शैली मे शैथिल्य तथा अपरिपक्वता पाई जाती है। उनके देखने से साफ पता चलता है कि कोई नवसिखुआ लेखक इसको लिख रहा है, जिसमें भाषा अभी मँजकर परिपुष्ट नहीं हुई है। उदाहरण के लिये 'राजा हारदौल' नामक कहानी का आरम्भ देखिए :—

'बुन्देलखंड मे ओरछा पुराना राज्य है. इसके राजा बुन्देले हैं, इन बुन्देलो ने पहाड़ी घाटियो में अपना जीवन विताया है। एक समय ओरछा के राजा जुझार सिंह थे। ये बड़े साहसी और बुद्धिमान् थे। शाहजहाँ उस समय दिल्ली के बादशाह थे।'

सबसे पहली बात जो इस खंड में मिलती है, वह है कहानियो की शैली का वर्णनात्मक तथा घटना-प्रधान ढंग। इसमें सीधे-सादे शब्दो मे घटनाओं की लड़ी सजाई गई है, और उसी ढंग से जैसे बूढ़ी माताएँ अपने बच्चो को कहानी सुनाया करती हैं। 'एक राजा था उसके सात रानियाँ थीं' इत्यादि। इसके

देखने से यह स्पष्ट विदित है कि कहानी-लेखक हिन्दी में अभी लिखना प्रारम्भ कर रहा है, उसके थोड़े स्थल में अधिक भावों के कहने की क्षमता, चरित्र-विशेष के अन्तर्जगत् का रहस्योद्घाटन करने की सामर्थ्य नहीं है। कहीं कहीं व्याकरण की अशुद्धियाँ, तथा नए नए हिन्दी-शब्दों के बनाने के प्रयत्न में दोष भी होता है। जैसे 'जूगनू की चमक' नामक कहानी में एक पात्र का कथन है:-

'चाहे रक्षणता, शरणागतो से उचित व्यवहार'

'रक्षणता' आदि नवीन और अप्रयुक्त भाववाचक संज्ञाओ का अशुद्ध प्रयोग होता था। भाषा के शैथिल्य, वर्णन-शैली के शैथिल्य के साथ ही साथ इनकी आरम्भिक कहानियों मे 'उपदेशात्मकता' की भरमार रहती थी। प्रत्येक पैराग्राफ के पश्चात् लेखक कुछ उपदेश निकाल कर पाठकों के सम्मुख रखना चाहता था। जैसे 'पंच परमेश्वर' नामक कहानी का आरम्भिक अंश लीजिए :—

'जुम्मन शेख तथा अलगू चौधरी मे गाढ़ी मित्रता थी। साझे में खेती होती थी, कुछ लेन-देन में साझा था। एक को दूसरे पर विश्वास था; जुम्मन जब हज करने गए थे, तब अपना घर अलगू को सौंप गए थे; और अलगू जब कभी बाहर जाते तब अपना घर जुम्मन पर छोड़ देते थे। उनमें न खान-पान का व्यवहार था न धर्म का नाता। केवल विचार मिलते थे, मित्रता का मूल मंत्र भी यही है।'

बात-बात मे उपदेश निकालना इनकी आरम्भिक कहानियाँ

में ही अधिक पाया जाता है, यद्यपि थोड़ा-बहुत उपदेश देने की प्रवृत्ति इनकी प्रायः सम्पूर्ण कहानियों में दिखाई पड़ती है।

सारांश यह है कि प्रेमचन्द की आरम्भिक हिन्दी-कहानियों में वे सभी वस्तुएँ पाई जाती हैं, जो एक प्रसिद्ध कलाकार की आरम्भिक रचना में होती है, विशेषतया एक ऐसे कलाकर की रचना में जो अपने विचारों को एक साँचे से दूसरे साँचे में ढालने का प्रयत्न कर रहा हो। यदि कोई दूसरा लेखक होता तो उसके लिए इतना ही कठिन था, शायद इनको आरम्भिक रचना और भी शिथिल और अशुद्ध होती। प्रेमचन्द तो हमारे प्रशंसा के पात्र हैं, जिन्होंने अपनी भाषा और भावों को विद्युद्गति से परिमार्जित किया, उसकी शिथिलता और दुर्बलता को दूर करके उसे इतना परिपक्व बनाया।

कुछ ही काल पश्चात् इनकी कहानियों में यथेष्ट कला और भापा का एक अत्यन्त प्रौढ़ और मँजा हुआ स्वरूप देखने को मिलता है। थोड़े स्थल में अधिक भावों के व्यक्त करने की समर्थता आ गई; हिन्दी के तत्सम शब्दों के प्रयोग में, तथा हिन्दी के भावों और मुहाविरों की यथास्थान योजना में पूर्ण कुशल हो गए। 'सप्त सरोज' के तीन साल पश्चात् की रचना का उदाहरण 'दो कब्र' नामक कहानी से लीजिए :—

'अब न वह यौवन है, न वह नशा, न वह उन्माद। वह महफिल उठ गई, वह दीपक बुझ गया, जिससे महफिल की रौनक

थी । वह प्रेम-मूर्ति कब्र की गोद में सो रही है, हाँ उसके प्रेम की छाप अब भी हृदय पर है और उसकी अमर स्मृति आँखों के सामने । वीरांगनाओं में ऐसी वफ़ा, ऐसा प्रेम, ऐसा व्रत दुर्लभ है और रईसों में ऐसा निवाह, ऐसा समर्पण, ऐसी भक्ति और भी दुर्लभ ।'

इन कहानियों में, जैसा कि ऊपर के उदाहरण से स्पष्ट है वर्णन के साथ ही साथ भावुकता का भी एक सुन्दर सामंजस्य दिखाई पड़ता है । इस काल की रचनाओ के निर्माण-क्रम (Technique) में भी विकाश होता हुआ दिखाई पड़ता है । कहानियाँ वर्णनात्मक न होकर भावात्मक हो गई हैं । आरम्भिक कहानियों का ढाँचा उपन्यास के ढाँचे की तरह था । उनमें बहुत से पात्रो की सहायता से कहानी का स्थूल ढाँचामात्र खड़ा कर दिया गया था । मध्य काल की कहानियों में हम देखते हैं कि पात्रो की संख्या घटा दी गई है, और सूखे वर्णन की अपेक्षा, चरित्र के मानसिक वृत्तियों के अध्ययन, अंतर्द्वन्दों का उस पर प्रभाव, पात्र विशेष का अध्ययन आदि की विशेष ओर ध्यान दिया गया है । जैसे 'मंत्र' नामक कहानी से पं० लीलाधर चौबे का वर्णन है :—

'यही चौबेजी की शैली थी, वह वर्तमान की अधोगति और दुर्दशा तथा भूत की समृद्धि और सुदशा का राग अलाप कर, लोगों में जातीय स्वाभिमान जागरित कर लेते थे, इसी सिद्धि की

बदौलत उनकी नेताओं में गणना होती थी, हिन्दू सभा के तो वह कर्णधार ही समझे जाते थे।'

भाषा का यह परिमार्जित स्वरूप, भावो की यह सुसम्बद्धता इनकी आरम्भिक कहानियों मे न थी। इसके पश्चात् तो प्रेमचन्द्र की कला दिन पर दिन निखरती गई और कहानी के प्रायः सभी उपकरण उसमें दिखाई देने लगे। एक उत्कृष्ट कोटि के लेखक के समान इनकी लेखनी में वह बल आ गया कि भाषा इनके हाथ की कठपुतली बन गई। उसकी सहायता से समाज के जिस अंग को इन्होंने लिया, किसी चरित्र-विशेष का जो भी अग देखा उसका जीता-जागता स्वरूप वर्णन करने लगे।

कहानी कला का सबसे चरम व विकसित रूप इनकी अन्तिम कहानियों मे मिलता है, जहाँ से एक वाक्य भी नहीं हटाया जा सकता था जहाँ भाषा का प्रभाव सर्वदा की तरह स्वच्छ एवं धारावाहिक है। जैसे 'अग्नि-समाधि' के आत्मसगीत नामक कहानी से —

'आधी रात थी, नदी का किनारा था। आकाश के तारे स्थिर थे और नदी में उनका प्रतिबिम्ब लहरो के साथ चंचल। एक स्वर्गीय संगीत की मनोहर और प्राण-पोषक ध्वनियाँ इस प्रकार छा रही थी :—जैसे हृदय पर आशाएँ छाई रहती है, या मुखमण्डल पर शोक'

भाषा और भावों के मितव्ययिता के साथ अन्तर्जगत् का वर्णन

करने में अब लेखक की प्रवृत्ति संशक्त अधिक हो गई थी, जो कला की चरम सीमा है।

प्रेमचन्द की कहानियों के भेद और वर्गीकरण :—

पहले अध्याय में कहानी-कला के सिद्धान्तों की विवेचना करते समय, हम हिन्दी में प्रचलित उन पद्धतियों का भी निर्देश कर चुके है, जिनके आधार पर आधुनिक हिन्दी कहानियाँ लिखी जा रही हैं। वे पद्धतियाँ क्रमशः आत्म-कथन प्रणाली, ऐतिहासिक प्रणाली, कथोपकथन प्रणाली, डायरी प्रणाली और पत्र-प्रणाली हैं। अब हमें प्रेमचन्द की कहानियों में इनके उदाहरण ढूढ़ने हैं। प्रेमचन्दजी ने इन सभी पद्धतियों के आधार पर कहानियाँ लिख कर अपनी व्यापक कहानी-कला-कुशलता का परिचय दिया है।

१—आत्मकथन-प्रणाली—की अनेक कहानियाँ हैं, जैसे :— चोरी (प्रम-तीर्थ मे) डपोर सख (प्रेरणा मे), विद्रोह, रामलीला, प्रेरणा, शान्ति, बड़े भाई साहब, इत्यादि !

२-ऐतिहासिक-प्रणाली — बज्रपात, दिल की रानी, शतरंज के खिलाड़ी, रानी सारंधा, तथा नव निधि की कहानियाँ !

३—कथोपकथन-प्रणाली—की कहानियाँ बहुत कम है, जैसे कानूनी कुमार, जादू (मानसरोवर भाग २ की अन्तिम कहानियाँ)

४—डायरी-प्रणाली—मोटेराम शास्त्री की डायरी।

५—**पत्र-प्रणाली**—दो सखियाँ, कुसुम ।

कथा वस्तु के आधार पर कहानी के तीन भेद किये जा सकते हैं। घटना-प्रधान, चरित्र प्रधान और भाव-प्रधान कहानियाँ। प्रेमचन्द की अधिकांश कहानियाँ घटना-प्रधान, कुछ चरित्र-प्रधान और कुछ भाव-प्रधान है। कुछ ऐसी भी कहानियाँ हैं, जिनमें तीनों उपकरणों का सुन्दर सामंजस्य है। वास्तव में यही होना चाहिए। उसमे पाठक की प्रत्येक वृत्ति की पूर्ति के साधन उपस्थित किए जाने चाहिए। प्रेमचन्द की बाद की अधिकांश कहानियाँ इसी ढंग की होती है, जैसे पंच परमेश्वर—सोहाग की रात, मंत्र इत्यादि। आगे तीनों प्रकार की कहानियों पर विस्तृत विचार किया जायगा।

१—**घटना प्रधान कहानियाँ**—प्रेमचन्द की अधिकांश कहानियाँ, विशेषतया आरम्भिक कहानियाँ घटना-प्रधान है। इन कहानियों में एक घटना तो प्रधान रहती है और उसकी सहायता के लिए बहुत सी छोटी घटनाएँ रहती हैं, जैसे 'पंच परमेश्वर' नामक कहानी में जुम्मन शेख तथा अलगू चौधरी में गाढ़ी मित्रता प्रधान घटना है। परन्तु जुम्मन की मौसी के पक्ष मे अलगू के फैसला करने से वैमनस्य का उत्पन्न होना, फिर अलगू चौधरी के बैल को विष देना, दूसरे बैल को एक कंजूस के हाथ बेचना, मूल्य न पाने पर पंचायत आदि सहायक घटना है, जिनके योग से पुनः मैत्री स्थापित हो जाती है। यही बातें प्रायः सभी घटना-प्रधान कहानियों में है। सबसे उल्लेखनीय बात जो घटना-प्रधान

कहानियों में होनी चाहिये, वह है केवल आकर्षक घटनाओं का संकलन, तथा उनका सुसम्बद्ध आयोजन। प्रेमचन्द्र ने इन दोनों बातों का पूर्णतया तो नहीं, परन्तु बहुत कुछ पालन अवश्य किया है। उनकी कुछ कहानियाँ ऐसी हैं, जहाँ व्यर्थ घटनाओं के विस्तार से कहानी का आकार बढ़ाया जाता है, एक बात के आने पर उसका वर्णन करते ही जाना उनका स्वभाव सा है, जिसका परिणाम यह होता है कि कहानी की गति शिथिल और उसका प्रभाव बँट जाता है। पाश्चात्य देश के कहानी लेखकों में आप यह बात न पावेंगे। Maupassant, Belzac की कहानियाँ पढ़िए; आप देखेंगे कि पाँच या छः पृष्ठ में ही सारी कहानी समाप्त हो जाती है, उसमें एक भी वाक्य फालतू नहीं है, जो कहानी के लक्ष्य की पूर्ति में बाधक हो सके। उदाहरण के लिए 'मोपासा' की एक अनूदित कहानी 'प्रेमोन्माद' का आरंभ देखिए:—

'मार्क्विश वाटो के यहाँ भोज के अवसर पर, ग्यारह शिकारी आठ स्त्रियाँ, और एक स्थानीय डाक्टर एक सुन्दर सुसज्जित टेबिल के चारो ओर बैठे हुए थे। सारा कमरा मोमबत्तियों के प्रकाश से जगमगा रहा था। भोज जब समाप्ति पर था तो सहसा किसी ने प्रेम की बात छेड़ दी। इस सम्बन्ध में वाद विवाद चल पड़ा कि कोई मनुष्य सच्चे हृदय से एक से अधिक बार प्रेम करता है या नहीं?'

एक भी बात का आवश्यकता से अधिक वर्णन नहीं है पर

प्रेमचन्द्र तो किसी वस्तु का वर्णन करते समय उसी मे अपने को भूल जाते हैं, यहाँ तक की अपने उद्देश्य का भी स्मरण नहीं रहता। किसी भी कहानी से इसका उदाहरण मिल सकता है। उदाहरण के लिए 'झाँकी' नामक कहानी से :—

'सेठ घूरेलाल उन आदमियों मे हैं, जिनका प्रातः को नाम ले लो तो दिन भर भोजन न मिल। उनके मक्खीचूसपने की सैकड़ों ही दंत कथाएँ नगर में प्रचलित हैं। कहते है एक बार मारवाड़ का एक भिखारी उनके द्वार पर डट गया कि भिक्षा लेकर ही जाऊँगा। सेठ जी भी अड़ गए की भिक्षा न दूँगा, चाहे कुछ भी हो। भिक्षुक भी अपनी धुन का पक्का था। सात दिन द्वार पर बेदाना पानी के पड़ा रहा और अन्त मे वहीं मर गया।'

इस प्रकार प्रेमचन्द् विषय को छोड़कर जिस घटना को लेते है, उसका सांगोपांग दृश्य खींचे बिना उनकी लेखनी नहीं रुकती। इस प्रकार कहानी का आकार बहुत ही दीर्घ हो जाता है। कलाकार के लिए यह एक बहुत बड़ा दोष माना जा सकता है। इसीलिए बहुत से लेखक तो इतना कहने का भी साहस करते हैं कि प्रेमचन्द् की कहानियाँ, कहानियाँ नहीं, वरन् कहानी और उपन्यास के बीच की चीज हैं। प्रेमचन्द्र की आधी कहानियाँ तो २० से ३० पृष्ठ तक जाती है। कोई भी कहानी लीजिए, लेखक पात्रों के विषय मे लिखते समय या परिस्थिति-विशेष का वर्णन करते समय अपनी पूर्ण जानकारी दिखलाने लगता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि जो कुछ प्रेमचन्द्र उस समय कहते हैं, वह

स्वाभाविक हृदय-ग्राही और यथातथ्य होता है, पर होता है प्रायः वह अनावश्यक। घटनाओं की लड़ी सजाना एक बात है और कहानी की एकता की रक्षा करना दूसरी, दोनों एक साथ नहीं हो सकता। यही प्रेमचन्द कहते हैं। परिणामतया उनकी बहुत सी कहानियाँ कला की दृष्टि से न्यून कोटि की लगती हैं।

चरित्र-प्रधान कहानियाँ—घटना और चरित्र का अन्योन्याश्रय संबंध रहता है, परन्तु चरित्र-प्रधान कहानी कला की दृष्टि से घटना-प्रधान कहानी से ऊँची ठहरती है। क्योंकि पहली में बहिर्जगत् की बातों का चित्रण रहता है, दूसरे में अन्तर्जगत् की घटनाओं का, अर्थात् चरित्र विशेष की मानसिक वृत्तियों का विश्लेषण, जिसमें विशेष कला-कुशलता की आवश्यकता रहती है। प्रेमचन्द ने स्वयं 'प्रेम पीयूष' की भूमिका में इस बात का उल्लेख किया है।—

'उपन्यासों की भाँति कहानियाँ भी कुछ घटना-प्रधान होती हैं कुछ चरित्र-प्रधान। चरित्र-प्रधान कहानी का पद ऊँचा समझा जाता है। मगर कहानी में विस्तृत विश्लेषण की गुंजाइश नहीं रहती। यहाँ हमारा उद्देश्य सम्पूर्ण मनुष्य को चित्रित करना नहीं, वरन् उसके चरित्र का एक अङ्ग दिखाना है। जब हमारे चित्र इतने सजीव और आकर्षक हो जाते हैं कि पाठक अपने को उनके स्थान पर समझ लेता है, तभी उसे कहानी में आनन्द प्राप्त होता है। अगर लेखक ने अपने पात्रों के प्रति पाठक में यह सहानुभूति न उत्पन्न कर दी, तो वह उद्देश्य में असफल है।'

अपने उपर्युक्त सिद्धान्त का प्रेमचन्द ने अपनी चरित्र-प्रधान कहानियो में बड़ी सफलता के साथ पालन किया है। उनके पात्र बड़े ही सजीव और आकर्षक होते हैं। उनके सुख में हम उनके साथ हँसते, दुःख में उनके साथ रोते है। इसका एक कारण यह है कि वे काल्पनिक जगत् से न लिए जाकर हमारे बीच से लिए गये है, अतः उनकी अनुभूतियों में तादात्म्य का अनुभव करते हैं। उदाहरण के लिए 'बड़े भाई साहब' नामक कहानी का उदाहरण लीजिए :—

'अपनी छात्रावस्था मे किसने ऐसे विद्यार्थियों को न देखा होगा जो रात दिन कठोर परिश्रम करते रहने पर भी परीक्षा में असफल होते रहते है, और वे कुशाग्र बुद्धि छोटे भाई पर, चाहे वह उनकी ही कक्षा मे क्यो न हो, अपने बड़प्पन और रोब का सिक्का बराबर जमाया करते हैं। यही 'बड़े भाई' नामक कहानी का कथानक है, पर इसी को लेखक ने कितना आकर्षक बना दिया है। इसका कारण यह है कि कहानी का कथानक एक मनो-वैज्ञानिक सत्य पर निर्भर है, और वह है छोटे भाई पर क्रोध तथा उपदेश का भाव बराबर जताना। चरित्र-प्रधान कहाँनियो में सबसे श्रेष्ठ वही कहानी होती है जिसका आधार किसी मनो-वैज्ञानिक सत्य पर हो। इस प्रकार प्रेमचन्द की कहानियो में चरित्रो की बड़ी ही यथार्थ झाँकी देखने को मिलती है। कोई भी चरित्र लीजिए आपको उसके वर्णन में स्वाभाविकता का

आभास मिलेगा। 'आसुओं की होली' में एक चरित्र पर दृष्टि-पात कीजिए।—

'नामों को बिगाड़ने की प्रथा न जाने कब चली और कहाँ शुरू हुई। पण्डित जी का नाम तो श्री विलास था, पर मित्र लोग सिलबिल कहा करते थे। नामों का असर चरित्र पर कुछ न कुछ पड़ जाता है। बेचारे सिलविल सचमुच ही सिलविल थे। दफ्तर जा रहे हैं, मगर पायजामे का इजारबन्द नीचे लटक रहा है, सिर पर फेल्टकैप है मगर लम्बी सी चुटियाँ पीछे झाँक रही है। अचकन तो बहुत सुन्दर है, कपड़ा फैशनेबल, सिलाई अच्छी मगर जरा नीची हो गई है। न जाने उन्हें व्यव-हारों से क्या चिढ़ थी।'

चरित्र का कितना वास्तविक अध्ययन हुआ है यही बात आपको प्रेमचन्द की सभी कहानियों से मिलेगी।

परन्तु सबसे प्रधान बात चरित्र के विश्लेषण में होती है। परिस्थिति-विशेष में आ पड़ने के कारण चरित्र के जीवन के दृष्टिकोण में परिवर्तन दिखाना। नीच से नीच और कलुषित पुरुष के हृदय में भी देवता का अंश छिपा रहता है। उसी के जीवन में कभी ऐसी घटना हो जाती है जिससे उसकी सम्पूर्ण कालिमा धुल जाती है, और अपना जीवन एक नए सिरे से प्रारम्भ होता है, जिसकी लोगों को कभी आशा नहीं रहती। पात्रों के जीवन के इस आकस्मिक परिवर्त्तन बिन्दु (Turning point) को सफल कलाकार

ही दिखला सकते हैं। प्रेमचन्द की नई कहानियाँ इसके उदाहरण स्वरूप रखी जा सकती हैं। 'आत्माराम' कहानी—

बेदोंग्राम में महादेव सुनार एक प्रसिद्ध व्यक्ति है, उसने अपने जीवन को झूठ तथा धोखे की ही कमाई से व्यतीत किया है। न मालूम कितनों को धोखा देकर उसने धन अपहरण किया होगा। इसके साथ ही साथ शराब, वेश्यागमन आदि दुर्व्यसनों में सदा लिप्त रहा है। उसका सारा जीवन कलुषित और पापमय है। परंतु उसके पापमय जीवन की काल कोठरी में एक आलोक है, और वह है उसका सुग्गा जिसका नाम उसने आत्माराम रक्खा है। पारिवारिक विपत्तियों से जब वह आकुल हो जाता है तो उस शुक की ओर देख कर समस्त दुख भूल जाता है। इस शुक को वह हृदय से बराबर लगाए रहता है और 'सत्त गुरुदत्त शिवदत्त दाता' का पाठ पढ़ाया करता है। एक दिन वह शुक पिंजड़े से निकल कर उड़ जाता है। महादेव उसको पकड़ने के लिए दौड़ता है। रात हो जाती है, शुक एक वृक्ष पर बैठता है, जिसके नीचे महादेव को चोरी का कुछ माल मिल जाता है। इसका कारण वह सुग्गे को ही समझता है। यहीं से उसके जीवन का परिवर्तित पथ आरम्भ हो जाता है। लोगों का अपहरण किया हुआ धन लौटा देता है। वही शुक जिसे पक्षी-प्रेम के नाते रखा था, उसका गुरु हो जाता है और वही 'सत्त गुरुदत्त शिवदत्त दाता' उसका गुरुमंत्र हो जाता है।

इसी प्रकार से और भी कहानियाँ प्रेमचन्द के चरित्र-अध्य-

मन की सूक्ष्म परख का परिचय देती है, जैसे मंत्र, लांछन, सोहाग का शव, दो बहनें आदि। चरित्रों के उपस्थित करने के चार साधन हैं :—

१—संकेत द्वारा।

२—वर्णन द्वारा।

३—वार्तालाप द्वारा।

४—घटनाओं के विकास द्वारा।

प्रेमचन्द ने चारों साधनों का सहारा चरित्रों के चित्रण में लिया है।

१—संकेत द्वारा चित्रण सबसे अच्छा समझा जाता है, क्योंकि लेखक उसमें चरित्र की विशेषताओं का वर्णन करके, उनके विषय में स्वयं सम्मति न प्रकट कर पाठकों के ऊपर छोड़ देता है। जैसे 'डपोर संख' नाम की कहानी है।

२—वर्णन द्वारा चरित्र चित्रण प्रेमचन्द ने अधिक किया है और बड़े सफल रूपसे, जैसे 'लांछन' कहानी में जुगनू बाई का चरित्र :—

'अगर संसार में कोई ऐसा प्राणी होता, जिसकी आँखें लोगों के भीतर घुस सकतीं, तो ऐसे बहुत कम स्त्री और पुरुष होंगे, जो उनके सामने सीधी आँखें करके ताक सकते। महिला आश्रम की जुगुनू बाई के विषय में लोगों की कुछ ऐसी ही धारणा हो गई थी। वह बेपढ़ीलिखी, गरीब, बूढ़ी हँसमुख। लेकिन जैसे किसी चतुर प्रूफ़-रीडर की निगाह गल्तियों पर ही जा पड़ती है

उसी तरह उसकी आँखें भी बुराइयों पर पहुँच जाती थीं। शहर की ऐसी कोई महिला नहीं थी जिसके विषय में दो-चार लुकी-छिपी बातें उसे न मालूम हो।'

इस प्रकार लेखक ने वर्णन द्वारा जुगुनू बाई के चरित्र की विशेषता बताई है।

३—वार्तालाप द्वारा चरित्र-चित्रण करना और भी कठिन है, क्योंकि इसमें लेखक को एक शब्द भी कहने का अवकाश नहीं रहता। प्रेमचन्द की ऐसी बहुत कम कहानियाँ है जिसमें सारी कहानी में वार्तालाप के ही द्वारा चरित्र-चित्रण हो। 'जादू' नाम की कहानी इसी प्रकार की है। परन्तु ऐसी कहानियाँ सैकड़ों है, जहाँ बीच बीच में वार्तालाप के द्वारा चरित्र की विशेषता बताई गई है। 'हिंसा परमो धर्मः' मे आधुनिक समय के ढोंगी मुल्लाओ का चित्र देखिए:—

काजी साहब ने तलवार चमका कर कहा—पहले आराम से बैठ जाओ, सब कुछ मालूम हो जायगा!

औरत—तुम तो मुझे कोई मौलवी मालूम पड़ते हो। क्या तुम्हें खुदा ने यही सिखाया है कि पराई बहू-बेटियो को जबरदस्ती घर में बन्द करके उनकी आबरू बिगाड़ो।

काजी—हाँ, खुदा का यही हुकम है, कि काफिरो को जिस तरह मुमकिन हो इसलाम के रास्ते पर लाया जाय। अगर खुशी से न आते हो जबर्दस्ती से।

औरत—इसी तरह अगर कोई तुम्हारी बहू-बेटी को पकड़ कर बे-आबरु करे तो ?

काजी—हो ही रहा है। जैसा तुम हमारे साथ करोगे, वैसा हम तुम्हारे साथ करेंगे। हिन्दू कौम तो हमें मिटा देना चाहती है। धोखे से, लालच से, जब से मुसलमानों को बे-दीन बनाया जा रहा रहा है, तो क्या मुसलमान बैठे मुँह ताकेगें।

४—घटनाओं के द्वारा चरित्र वर्णन तो सभी लेखक करते हैं, प्रेमचन्द ने भी यही किया है।

भाव-प्रधान कहानियाँ—लिखते तो प्रेमचन्द अवश्य हैं, पर बहुत कम। अन्तिम कहानियों में इसके उदाहरण अधिक मिल सकते है। कहीं-कहीं तो भावों के चित्रण ने गद्य-काव्य का रूप धारण कर लिया है। यदि सच पूछा जाय तो उत्कृष्ट कोटि के पाठकों के लिए वे कहानियाँ उपयुक्त हो सकती हैं, जहाँ घटनाओं और भावों का आवश्यकतानुसार सामंजस्य हो। कोरी घटना-प्रधान कहानी भी अच्छी नहीं होती, क्योंकि उसके पढ़ने से पाठक के हृदय के कवित्व एवं कल्पना का कोना अतृप्त ही रह जाता है। प्रेमचन्द की आरंभिक कहानियाँ ऐसी ही है। प्रसाद जी की कहानियों की तरह अधिक कवित्वमय कहानियाँ भी न होनी चाहिएँ, क्योंकि घटना के अभाव से कहानी का सारा मजा खो जाता है।

प्रेमचन्द की आत्म-संगीत नामक कहानी भाव-प्रधान कही जा सकती है। जैसे—

'मनोरमा अचानक एक तन्मय अवस्था में उछल पड़ी। उसे प्रतीत हुआ कि संगीत निकटतर आ गया है। उसकी सुन्दरता और आनन्द वैसे ही अधिक प्रखर हो रहा था जैसे बत्ती उकसा देने से दीपक अधिक प्रकाशमान हो जाता है। पहले चित्ताकर्षक था तो अब आवेश-जनक हो गया था। आह! तू फिर अपने मुँह क्यो कुछ नहीं माँगता! अहा, कितना विरागजनक राग है, कितना विह्वल करने वाला। मै अब तनिक-भी धीरज नहीं धर सकती। उस संगीत मे कोयल की-सी मस्ती है, पपीहे की-सी वेदना है, श्यामा की-सी विह्वलता है, इसमें वह सब कुछ है और अंतःकरण पवित्र होता है।

विषय की दृष्टि से कहानियों का वर्गीकरण:—ऊपर कहानी के तत्त्वों को दृष्टि में रख कर प्रेमचन्द्र की कहानियों का वर्गीकरण किया जा रहा था। विपय की दृष्टि से, सामाजिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक पौराणिक, जासूसी, भावुक और रुपक के ढंग की कहानियाँ हो सकती है। इसके अतिरिक्त अन्य प्रकार की भी कहानियाँ हो सकती है—जैसे अछूतोद्धार, हास्य-सम्बन्धी कहानियाँ। प्रेमचन्द ने सभी विषयो पर कहानियॉ नहीं लिखी है। ऐसा करना तो प्रत्येक कलाकार के लिए सम्भव नहीं है। यदि कोई ऐसा करे तो उसकी विशेष रुचि एक तरफ अवश्य मुड़ जायेगी। प्रेमचन्द ने समाज के व्यापक अंग का चित्रण किया है, अतएव अधिक विषय उनकी कहानी की परिधि के भीतर आ गये हैं।

१—राजनैतिक ढंग की कुछ ही कहानियाँ हैं; जैसे सत्याग्रह, सुहाग की साड़ी, कैदी, कुत्सा आदि।

२—ऐतिहासिक कहानियाँ हैं—वज्रपात, दिल की रानी, शतरंज के खिलाड़ी और नव-निधि की कहानियाँ।

३ ग्रामीण वातावरण की कहानियाँ तो सबसे अधिक हैं और सफल हुई हैं। लोकमत का सम्मान, पंच परमेश्वर, बूढ़ी काकी, विध्वंस, अग्नि-समाधि आदि उनमें श्रेष्ठ हैं।

४—अछूतोद्धार सम्बन्धी—शान्ति, संगीत, दो कब्र, आगा-पीछा आदि।

५—हास्य-रस की—निमंत्रण, मोटर के छींटे आदि।

इसके अतिरिक्त और भी विषय हो सकते है। कुछ कहानियाँ प्रेमचन्द्र ने बच्चों के लिए ही लिखी हैं जैसे, कुत्ते और बिल्ली की कहानियाँ। कुछ कहानियों मे पशुओं के स्वभाव का अच्छा अध्ययन हुआ है जैसे, दो बैलों की कथा आदि। इन सबका आगे के अध्यायों में उल्लेख होगा।

चौथा अध्याय

प्रेमचन्द की कहानियों में कला

पश्चिम मे 'कला' शब्द के नाम पर बहुत ही व्यर्थ का वितंडावाद खड़ा हो गया है, अतः प्रेमचन्द की कहानियों को यदि पाश्चात्य कला-कसौटी पर कसा जाय, तो वे अवश्य ही उच्च कोटि की न सिद्ध होंगी, उनमें कुछ नवीनता, मौलिकता मिलेगी जो पूर्व में बराबर रह आई है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि आधुनिक हिन्दी कहानियाँ पाश्चात्य ढंग पर लिखी जा रही हैं और प्रेमचन्द ने भी अपनी कहानियों के ढाँचे को पश्चिम से ही लिया है, पर उस ढाँचे मे भारतीयता की रक्षा कर के अपनी कला-कुशलता का परिचय दिया है। पूर्व पश्चिम का अन्ध-भक्त नहीं बन सकता, जैसा कि वहीं के एक कवि (Rudyard Kipling) ने लिखा है—

East is east, and west is west and the two cannot meet.

दोनों देशों के संस्कृति में भेद है और तदनुसार उनके साहित्यिक दृष्टिकोण में भी। पश्चिम में कला कला के लिए मानी जाती है, पूर्व में कला जीवन से संबद्ध है, अर्थात् कला या

साहित्य पश्चिम में एक खिलवाड़ या मनोरंजन की वस्तु है और पूर्व के कला और साहित्य का परम ध्येय है जीवन का उत्थान एवं सुधार। कहने की आवश्यकता नहीं है कि प्रेमचन्द ने भी अपनी कहानियों में भारतीय दृष्टिकोण की पूर्णतया रक्षा की है। अपने समस्त साहित्यिक कृति के ध्येय को उन्होंने दो ही वाक्यों में स्पष्ट कर दिया है।

'जिस साहित्य से हमारी रुचि न जागे, हमे आध्यात्मिक और मानसिक तृप्ति न मिले, हममें शक्ति और गति न पैदा हो, हमारा सौंदर्य-प्रेम न जागृत हो, जो हममें सच्चे संकल्प और कठिनाइयों पर विजय पाने की सच्ची दृढ़ता न उत्पन्न करे, वह आज हमारे लिए बेकार है, वह सच्चा साहित्य कहलाने का अधिकारी नहीं।'

प्रेमचन्द की साहित्यिक कृति की नींव इसी पृष्ठ-भूमि पर खड़ी है जिसमें भारतीयता का उच्च सन्देश भरा पड़ा है। इसकी व्याख्या आगे चलकर होगी। आज यहाँ पर कहानियों में रचना-क्रम के अनुसार उनके प्रत्येक अवयव को लेकर उनकी कला-समीक्षा की जायेगी। किसी कहानी की समीक्षा उसके पाँच आवश्यक तथ्यों को सामने रखकर भली-भाँति की जा सकती है। उसकी कथा-वस्तु चरित्र-चित्रण, देश-काल या वातावरण, वर्णन और भाषा-शैली।

१ प्रेमचन्द की कहानियों की कथा-वस्तु—चूँकि अपनी कहानियों के द्वारा प्रेमचन्द भारतीय समाज के व्यापक अंग का

चित्रण करना चाहते थे अतएव उन्होंने अपनी कथावस्तु को भी समाज के भिन्न-भिन्न अंगों से लिया है। आधुनिक युग में दैनिक जीवन के संघर्ष को चित्रित करने के लिए जीवन के विभिन्न क्षेत्रों की घटनाओ का आधार लिया है। किसान की टूटी-फूटी झोपड़ी से लेकर, नगर की विशाल अट्टालिकाओ तक में होने वाली घटनाओं को अपनी कहानी का कथानक बनाया है। यदि एक ओर उन्होने निरक्षर सरल देहातियों का हृदयग्राही चित्रण किया है तो दूसरी ओर विश्वविद्यालयों के उच्च शिक्षा-प्राप्त विद्वानो का वर्णन। इसके अतिरिक्त सेठ-साहूकार, मजदूर, धर्म-सुधारक, वकील, डाक्टर, राजनीतिक, धर्मात्मा, नेता पडें, साधु, चोर, पुलिस, क्लर्क, विद्यार्थी आदि सबको अपनी कहानियो का पात्र बनाया है।

परन्तु समाज के इन व्यापक अंगो को लेकर अपनी कहानियों के कथानक में विविधता लाने का प्रयत्न तो प्रेमचन्द ने अवश्य किया, पर उसका सर्वत्र निर्वाह न कर सके, अर्थात् सभी कथानको को सफल कहानी के रूप मे न परिणत कर सके। एक निश्चित रूढ़ि और ध्येय का चश्मा लगा लेने से सारा समाज हमे उसी में रँगा हुआ दिखाई पड़ता है। परिणामतया हम समाज को अपने दृष्टिकोण से देखकर उसकी पूरी परख नहीं कर पाते। जहाँ-जहाँ ब्राह्मण पंडितो का प्रेमचन्द ने वर्णन किया है वहाँ उन्हें ढोंगी, पेटू तथा हास्य का पुतला बनाकर छोड़ दिया है। प्रेमचन्द ने कहीं-कहीं कथा-वस्तु के चयन में अपने रूढ़िवाद और उपदेशात्मकता की छाप लगा दी है। इसी

कारण से कथावस्तु यथातथ्य और स्वाभाविक न होकर अस्वाभाविक हो गई है। उदाहरणार्थ दिहातियों को सरल, निष्कपट भाव का दिखाना तो उचित है, परन्तु सब जगह उन्हें धर्म का पुतला ही बनाना ठीक नहीं है। देहातों में भी बहुत से किसान बेईमान, दुष्ट और नीच भी होते हैं और शहरों में भी बड़े-बड़े धर्मात्मा और सिद्धान्तवादी। उदाहरण के लिए 'मन्त्र' नामक कहानी में प्रेमचन्द यह उपदेश देना चाहते हैं कि धर्म-सुधार की कोरी बातों से विजय नहीं मिलती, परन्तु उन्हें व्यावहारिकता की ओर उन्मुख होकर सेवा-भाव लाने का प्रयत्न करना चाहिए। इसी ध्येय की प्राप्ति के लिए समस्त ग्राम में प्लेग का प्रकोप दिखाते और पं० लीलाधर चौबे को सेवोपासक बनाकर कथावस्तु को खूब तोड़ते-मोड़ते हैं। 'दो बैलों की कथा', 'अधिकार' आदि कहानियों मे पशुओ को मनुष्यो से भी अधिक विचारशील और बुद्धिमान् बनाकर कहानी की कथा-वस्तु को अत्यन्त अस्वाभाविक बना दिया है। प्रेमचन्द इस प्रकार पहले से ही अपना ध्येय निश्चित कर लेते हैं, और उसी अनुसार कथा वस्तु को तोड़-मोड़ लेते हैं, उसका परिणाम यह होता है कि कहीं-कहीं कथा-वस्तु कल्पित और अस्वाभाविक हो जाती है।

एक और दोष पाठकों को इनकी कथा-वस्तु में मिलता है, वह है अनेक कहानियों के कथानक का शिथिल होना। कम से कम इनकी आरंभिक कहानियों में तो यह बात अधिक पाई जाती है। उसमें अनेक पात्रों का समावेश तथा जीवन के विविध

अंगो पर लिखने की प्रवृत्ति उनको अस्वाभाविक बना देती है। परिणामतया ऐसी कहानियों को यदि थोड़ा और बढ़ा दिया जाय तो खासा-अच्छा उपन्यास तैय्यार हो जाएगा। कहीं-कहीं तो कहानियों के शीर्षक को औपन्यासिक ढंग के ही इन्होंने दिये हैं, जैसे 'सप्त-सरोज' की एक ३० पृष्ठ की कहानी का नाम है 'लाल फीता या मजिस्ट्रेट का इस्तीफा।' डपोर शंख, कुसुम, बैंक का दिवाला, विस्मृत, दो भाई, दो सखियाँ, प्रारब्ध, मन्दिर व मस्जिद, लैला, दिल की रानी आदि कहानियों में भी किसी किसी का कथानक खीचतान करके चालीस पृष्ठ तक बढ़ाया गया है। 'दो सखियाँ' पत्र प्रणाली पर लिखी गई इनकी अन्तिम कहानियों का एक नमूना है जिसमें पत्रों का ताँता बढ़ते बढ़ते करीब दो सौ पृष्ठ तक (१६०) चला गया है, जिसे एक छोटा उपन्यास कहना असंगत न होगा। कहानियो के कथानक में इतना विस्तार करना कहानी की मिट्टी-पलीद करना है।

कुछ कहानियो की कथा-वस्तु में न तो समाज के संघर्ष का चित्रण है न किसी चरित्र के अन्तर्द्वन्द्व का। वरन् उसमें पूर्व-संस्कारों और भूत-प्रेतों के प्रभाव से मनुष्य-जीवन में परिवर्तन होना दिखाया गया है; जिससे पता चलता है कि लेखक भी उस पर विश्वास करता है। जैसे 'ब्रह्म का स्वांग', 'भूत', 'नागपूजा', 'पूर्व संस्कार' आदि कहानियों का कथानक

शायद आधुनिक ढंग के विज्ञान की ज्योति से प्रभावित शिक्षा-प्राप्त युवकों को खटके।

इतना होते हुए भी प्रेमचन्द की किसी भी कहानी की कथा-वस्तु में अश्लीलता नहीं आने पाई है। समाज के उस विकृत रूप का वर्णन नहीं किया है जो, पाश्चात्य लेखक किया करते हैं, या जो हमारे यहाँ के बहुत से कहानीकार कर रहे है। वे सर्वत्र मर्यादा के पालन में तत्पर दिखाई देते हैं। यदि कहीं नवयुवक-समाज में प्रेम के स्वच्छन्द स्वरूप का दर्शन भी हुआ है जैसे उन्माद, विद्रोही, आदि कहानियों में तो वहाँ यही दिखलाया गया है कि किस प्रकार आधुनिक युवक पाश्चात्य शिक्षा की चकाचौंध में आकर समाज के नियमों को तोड़ना चाहते हैं। विशेषता यह कि ऐसी कहानियों की समाप्ति भी आदर्श से ही की जाती है। यहाँ तक प्रेमचन्द की कहानियों के कथानक के छिटफुट दोषों का उल्लेख हुआ जो कि उनकी कुछ ही कहानियों में पाए जाते हैं। प्रेमचन्द ने अधिकांश सफल ढंग की ही कहानियाँ लिखी हैं, दो चार नहीं, सैकड़ों जिनके कथानक के नियोजन में उनकी उत्कट कला-कुशलता का परिचय मिलता है। पंच परमेश्वर, रानी सारन्धा, धोखा, आत्माराम, शतरंज के खिलाड़ी, कफन, मंत्र (मंत्र शीर्षक दो कहानियाँ हैं, यहाँ मेरा तात्पर्य है जहाँ डाक्टर चड्ढा का वर्णन है।) आदि अनेक कहानियों की कथा-वस्तु में स्वाभाविकता तथा सुसम्बद्धता

है। इसके अतिरिक्त इनकी सभी कहानियों की कथा-वस्तु बहुत ही सुसघटित, चित्ताकर्षक और रमणीय होती है।

इस रमणीयता के साथ ही साथ वे अपनी कहानियों की रचना में अपनी सूक्ष्म-पर्यवेक्षण शक्ति का भी परिचय देते हैं। ग्रामीण-जीवन का शायद ही कोई अंग हो जिसको इन्होने अपनी कहानियों का कथानक न बनाया हो। इसके अतिरिक्त जीवन के और भी विभिन्न अंगों के कथानक का आधार लेने मे, इनकी पैनी परख का परिचय मिलता है। दफ्तर के क्लर्कों में वेतन वृद्धि की रात-दिन शिकायत, उनका मशीन को काम करते रहना (विध्वंस में) रियासतों में अँधेर का दौर-दौरा (रियासत का दिवान) लेखको का पराधीनता में घोर दुख उठाना (लेखक) शिक्षित स्त्रियों का समाज के नियमों का उल्लंघन (मिस् पद्मा) अछूतो पर कुलीन ब्राह्मणों तथा अन्य वर्गों के अत्याचार (सद्गति) ढोंगी और आलसी साधुओं का समाज में रोब (गुरुमंत्र, बूढ़े बाबा का भोग) कांग्रेस और देश भक्ति के नाम पर स्वार्थवृत्ति का पालन (कुत्सा) आदि के कथानक के निर्वाह मे पूरी सफलता लेखक को मिली है।

ऐतिहासिक कहानियों मे कुछ की कथा-वस्तु बहुत ही सुन्दर बन जाती है, क्योंकि उसमें भारतीय इतिहास की उन घटनाओं का ही समावेश किया गया है जो सर्व-प्रसिद्ध हैं। जैसे राजपूतों के वचन-पालन की तत्परता (राजा हादौल) राजपूत

वीरांगनाओं की मर्यादा की रक्षा में प्राणों का विसर्जन (रानी सारन्धा) आदि।

एक सफल कहानी में कथानक के लिए तीन महत्त्वपूर्ण बातों का होना जरूरी है। कथा-वस्तु के सूत्र जीवन की उन विभिन्न घटनाओं से लिए जायँ जिनके निरीक्षण में लेखक की आँखें खुली रही हों। इसके पश्चात् उस कथा-वस्तु को सुचारु रूप से मस्तिष्क में सुरक्षित रखना चाहिए। तीसरे, लेखक में ऐसी क्षमता हो कि वह उस संचित कोश को पाठकों के सम्मुख एक आकर्षक और स्वाभाविक रूप में रख सके। प्रेमचन्द की रचना में ये तीनों बाते मौजूद है। यही कारण है कि उनकी कहानियाँ बहुत ही लोक-प्रिय हुई है।

चरित्र-चित्रण—इस कला में प्रेमचन्द हिन्दी साहित्य में अद्वितीय है। इनकी कहानियों के चरित्रों को देखने से स्पष्ट पता चलता है कि प्रेमचन्द ने उनका कितना गहरा और सूक्ष्म अध्ययन किया है। समाज के किसी भी क्षेत्र के वे चित्र क्यों न हों, लेखक ने उन्हें जीता-जागता रूप दे दिया है। इसी कारण वे अत्यंत स्वाभाविक और यथार्थ जान पड़ते हैं। कथानक की तरह इनकी कहानियों के चरित्र भी समाज के व्यापक अंग से लिए गए है। राजकुमारों से लेकर भिखमंगों तक, खानाबदोश जिप्सियो की शोख औरतो से लेकर भोले-भाले किसानों तक का बड़ा ही हृदयग्राही चित्र खींचा है। मनुष्यों को कौन कहे, पशुओं के हृदय में प्रवेश करके उनकी वृत्तियों का रहस्योद्घाटन

किया गया है। मनुष्यों में पूंजीपति, मजदूर, इसाई, मुसलमान, बूढ़ा, जवान, विद्यार्थी, अध्यापक, कवि, लेखक, सपेरा, सूम, डाक्टर, देश-सुधारक, पंडित और मौलवी जो जहाँ पर हैं अपनी विशेषता के साथ है। कहीं भी कृत्रिमता का नाम नहीं है। कौन सी कहानी का नाम लिया जाय। सभी मे चरित्र-चित्रण स्वाभाविक और सरस हुआ है। समाज के किसी पात्र को देखना हो तो उसे प्रेमचन्द की कहानियो मे देख लीजिए। आपको दोनो में तनिक भी अन्तर न दिखाई पड़ेगा। उदाहरण के लिए 'बड़े घर की बेटी' में भारतीय पारिवारिक जीवन की एक बड़े घर से आई हुई लड़की का कितना वास्तविक चित्र है। आनन्दी एक बड़े भारी धनाढ्य की एकमात्र कन्या है, उसके पिता शिक्षा पर मुग्ध होकर उसका विवाह एक वकील से कर देते है, यद्यपि अपेक्षाकृत एक छोटे परिवार में, जहाँ आनन्द के वे सब साधन, जो आनन्दी को उसके मायके में प्राप्त थे, नहीं मिल सकते थे। फिर भी उसने अपने भाग्य पर संतोष करके, गृहस्थी सँभाल ली। एक दिन भोजन बनाते समय देवर से कहा-सुनी हो गई, क्योंकि यह अपने मायके की निन्दा न सहन कर सकती थी। स्त्रियों के चरित्र का कितना वास्तविक अध्ययन हुआ है। अन्त मे जब घर में अलग होने तक की नौबत आ जाती है तो अपनी अश्रुधारा का प्रवाह करके (जैसा कि स्त्रियों में होता है) बीच-बचाव करके आनन्दी ही मेल कराती है और अपनी कुलीनता का परिचय देती है। इसी प्रकार 'दो बहनें' नामक कहानी में परस्पर

प्रतिद्वन्द्विता के भाव के चित्रण में लेखक की कितनी कला-कुशलता दिखाई पड़ती है। 'बूढ़ी काकी' में करुणा और हास्य का सामंजस्य है। रानी सारन्धा के चरित्र से भारत की राजपूत वीरांगनाओं का उज्वल चरित्र सामने खड़ा हो जाता है। इस पर भी यदि लोग यह कहें कि प्रेमचन्द के पात्रों का चरित्र सुन्दर नहीं है, तो उनके कथन में सर्वथा अनुपयुक्तता मिलेगी।

समाज की स्थिति के अनुसार प्रत्येक समाज तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है।— १—उच्च वर्ग। २—मध्यम वर्ग। ३—निम्न वर्ग।

१—प्रेमचन्द ने सभी वर्गों के चरित्र का बड़ा ही सूक्ष्म विश्लेषण किया है। जिस किसी को अपनी कहानियों का विषय बनाया उसकी सूक्ष्म अन्तर्वृत्तियों का वर्णन किए बिना उनकी लेखनी ही नहीं रुकती। जिस किसी को उन्होंने जीवन में एक बार देख लिया वह उनकी पैनी अन्तर्दृष्टि से अलग न जा सका। 'रियासत के दीवान' नामक कहानी में एक भारतीय राज्य की अराजकता के जितने चित्र हो सकते हैं, उसका प्राय. सांगोपांग वर्णन है। रियासतों में किस प्रकार मैनेजर राजा के हाथों की कठपुतली बना रहता है, किस प्रकार अङ्गरेज अफसरों के स्वागत में सारी रियासत की प्रजा चूस ली जाती है, किस प्रकार भारतीय नरेश अपने प्राचीन पथ से भ्रष्ट हो गये हैं—इत्यादि वृत्तियों की बड़ी ही सुन्दर व्याख्या हुई है। परन्तु न तो उच्च वर्गों के सभी चरित्रों का वे एक तरह से विश्लेषण कर सकते

हैं, न उनकी वृत्ति ही इन माई के लालों के वर्णन में रमी है। 'निमंत्रण' नामक कहानी में बड़हल की रानी का मोटे राम के भोजन करते समय भोजनालय का अपवित्र कराना अस्वाभाविक जान पड़ता है। 'कामना-तरु' में राजकुमार के जीवन के अन्तिम त्याग का वर्णन कृत्रिम जान पड़ता है। 'शिकार', 'दिल की रानी' आदि कहानियों में चरित्रों के चित्रण में अस्वाभाविकता नहीं आई है।

२ मध्यम वर्ग—उच्च वर्ग से अधिक मध्यम वर्ग के चरित्रों के चित्रण में प्रेमचन्द सफल हुए है, इसका कारण यह है कि मध्यम वर्ग के लोगों से उनका विशेष सम्पर्क था। 'मन्त्र' नामक कहानी में 'डाक्टर चड्ढा' के चरित्र में किसको एक नागरिक वातावरण के गुलाम, पैसों के लोभी डाक्टर का दृश्य न दिखाई देता होगा। इसी प्रकार 'सुहाग की रात' में केशव का बड़ा ही स्वाभाविक चरित्र-चित्रण हुआ है। इसी प्रकार अन्य मध्यम वर्ग के पात्रों का अच्छा चित्रण हुआ है।

३ निम्न और ग्राम्य जीवन के पात्र—परन्तु प्रेमचन्द की लेखनी जितनी, दरिद्र किसानों, मजदूरों, और पीड़ितों के चित्रण में उन्मुख हुई, उतनी किसी ओर नहीं। दीनों और फटेहालो का चित्रण प्रेमचन्द के समान हिन्दी का कोई लेखक नहीं कर सकता। इसका एकमात्र कारण यही है कि एक निर्धन परिवार में उत्पन्न होने के कारण उन्हें अपनी जीविका-निर्वाह के लिए

जीवन के उन सभी संघर्षों का अनुभव करना पड़ा था, जो एक दिन मनुष्य के जीवन में आते हैं। परिणामतया निम्न वर्ग के प्रत्येक चरित्र से चाहे वह चमार, धोबी, मेहतर, एक्कावान, मजदूर, बतरन माजने वाली, चपरासी, कोई भी हो इनकी ममता हो गई थी। इनके उद्धार की कामना उनके हृदय में थी और इन्हीं की दुर्दशा का वर्णन प्रेमचन्द ने अपनी कहानियों और उपन्यासों में किया। एक और कारण यह भी है कि निम्नवर्ग के पात्रों में चरित्र के विकास का जितना साधन मिलता है, उतना उच्च वर्ग के पात्रो में नहीं। निम्न वर्ग में भारतीय गावो के निरीह और सरल किसानों के चरित्र-चित्रण में तो ये अद्वितीय है। इसका कारण यह है कि उच्च और मध्यम वर्ग के लोगों से भारतवर्ष नहीं बसा है, वरन् उनकी संख्या तो इनी-गिनी है। भारत ग्रामीणों की संख्या से भरा-पड़ा है, अतः राष्ट्र के यही प्रतिनिधि कहे जा सकते हैं। 'प्रेम-पीयूष' की भूमिका में प्रेमचन्द ने इस बात को स्पष्ट कर दिया है। वे लिखते हैं कि:—

"इस संग्रह की प्रायः सभो कहानियाँ ग्राम्य-जीवन से संबन्ध रखती है, जहाँ हमें अपेक्षा कृत जीवन का मुक्त प्रवाह दिखाई पड़ता है, अपने प्रेम, त्याग, कलह और द्वेष के मौलिक रुप में। जिस देश के ८० प्रतिशत मनुष्य गावों में रहते हों, उसके साहित्य में ग्राम्य जीवन ही प्रधान रूप से चित्रित होना स्वाभाविक है। उन्हीं का सुख राष्ट्र का सुख, उन्हीं का दुःख राष्ट्र का दुःख और उन्हीं की समस्याएँ राष्ट्र की समस्याएँ है।"

उपर्युक्त सिद्धान्त के अनुसार ग्राम्य जीवन के प्रायः सभी प्रकार के चरित्रों का प्रेमचन्द ने बड़ा ही मार्मिक और हृदयग्राही चित्र खींचा है। ग्राम्य जीवन से सम्बन्धित इनकी सैकड़ों कहानियाँ अमर रहेंगी, जिनमें 'पंच परमेश्वर', 'सुजान भगत', 'अग्नि-समाधि', 'सौत', 'नमक का दरोगा' 'बूढ़ी काकी', 'कफन', 'गुल्ली डण्डा', 'ईदगाह', 'चोरी', 'कजाकी' आदि कहानियाँ विशेष उल्लेखनीय हैं। इन कहानियों के चरित्रो मे प्रेमचन्द ने यह दिखलाया है कि किस प्रकार भोले-भाले अशिक्षित और निर्धन ग्रामवासी सामाजिक प्रथाओं की बेड़ियों में जकड़े हुए हैं, किस प्रकार वे कर्ज से लदे हुए है। पुरानी प्रथा और मान-मर्यादा निबाहने में सर्वस्व का स्वाहा कर देने वाले देश और राष्ट्र की के समस्याओ से अनभिज्ञ घोर अन्धकार मे पड़े हुए घोर विपत्ति का जीवन व्यतीत कर रहे है। उन्हें प्रायः ऐसा करते देख-कर क्रोध के बदले दया आ जाती है। उदाहरण के लिए 'कफन' नामक कहानी को लीजिए, इसमें उसी दरिद्रताग्रस्त मानवों का चित्रण हुआ है जिनकी आत्मा निर्धनता के कारण मर चुकी है। वे बाप बेटे हैं, दरिद्र होते हुए भी कितने अकर्मण्य, आलसी और पतित है, कि उनकी एकमात्र गृहिणी प्रसव-वेदना से प्राण त्याग देती है। परन्तु अलाव के पास बैठकर, जहाँ वे खेतों से चुरा कर आलू भून रहे है, वे भली भाँति यह मार्मिक दृश्य देख कर रह जाते हैं। उनमें से कोई इसलिए उठकर सहायता के लिए नहीं जाता कि कहीं दूसरा आलू अधिक

न खा ले। प्रातः स्त्री के अन्तिम क्रिया के लिए वे, गाँव में जाकर पैसा माँगते हैं; पैसा पाने पर बाजार जाकर उसका भर पेट भोजन करते और मद्यपान करते हैं। मृत आत्मा की सद्गति की प्रार्थना करते और बेहोशी में मस्त, एक दूसरे पर गिर पड़ते हैं। इन दोनों चरित्रों के वर्णन द्वारा प्रेमचन्द ने बतलाया है कि किस प्रकार घोर दरिद्रता के कारण इन दोनो की आत्माएँ मर जाती हैं। उनमें लज्जा, स्वाभिमान, और मर्यादा के भावों का नाश हो गया है। ये हमारे दीन मानवता के प्रतीक हैं, उन लाखों कँगालों के नमूने हैं जिनसे हमारा देश बसा है। इसी प्रकार अन्य कहानियों में भी गाँवों के विभिन्न चरित्रों की अनेक वृत्तियों का सूक्ष्म चित्रण हुआ है, जिसकी विस्तृत व्याख्या आगे की जायेगी।

कहीं-कहीं निम्न वर्ग के पात्र-चित्रण में कुछ अस्वाभाविकता आ गई है, जैसे ब्राह्मण पंडितों का आपने जहाँ कहीं चरित्र दिया है, वहाँ उन्हें लोभी, धूर्त, ढोंगी तथा मूर्ख दिखाने का प्रयत्न किया है। 'सत्याग्रह' नामक कहानी मे प० मोटेराम सरकार से रुपया लेकर कॉग्रेस के विरुद्ध अनशन करते है, और बाद में मिठाई के लोभ में आकर उसको तोड़ कर अपनी हँसी उड़ाते है। इसी प्रकार 'निमंत्रण' नामक कहानी में भी वे लेखक के हाथ से उस दुर्दशा को पहुँचाए जाते हैं, जो शायद ही किसी ने आँखों देखा और कानों सुना हो। सभी पंडित लोभी, भुक्खड़ और ढोंगी नहीं होते। बहुत से बिलकुल इसके विपरीत होते हैं,

जिसका प्रमचन्द ने कहीं नाम नहीं लिया है। इसी प्रकार सेठों की कंजूसी आदि की कहीं कहीं व्यर्थ खिल्ली उड़ाई गई है।

यथार्थ और आदर्श

प्रेमचन्द की कहानियों में चरित्र-चित्रण की पूरी व्याख्या तब तक नहीं समझी जायगी, जब तक यथार्थवाद और आदर्शवाद के सम्बंध में थोड़ा-सा वर्णन न दिया जाय। इनकी विस्तृत व्याख्या अगले अध्याय में की जायेगी। यथार्थवाद पश्चिम की उपज है, उसके अनुसार किसी पात्र का चरित्र समाज में जैसा देखा जाय ठीक वैसा ही पाठकों के सम्मुख रख देना समीचीन है, परन्तु पात्र का यथातथ्य वर्णन करते हुए भी उसे कैसा होना चाहिए इसका निर्वाह आदर्शवादी कलाकार करता है, जो भारतीय परम्परा के अनुकूल है। प्रेमचन्द भी इसी के अनुयायी हैं, अतः अपने चरित्रों का पूर्णरूप से यथातथ्य चित्रण करते हुए भी, उनकी समाप्ति आदर्शात्मक ढंग की प्रणाली मे करने का प्रयास करते हुए प्रेमचन्द जी प्रायः सभी कहानियों मे पाए जाते है। पाश्चात्य कलाकारो की तरह वे जीवन का नंगा चित्र खींच करके नहीं छोड़ देते, ऐसा करने से समाज, साहित्य से कोई सन्देश नहीं पा सकेगा, वरन् वह पथ-भ्रष्ट हो जायेगा. जैसा कि आज योरुप में हो रहा है। यह सच है कि जीवन मे सर्वदा आदर्श का ही पालन होते नहीं देखा जाता है। सदा राम की ही रावण पर विजय होते नहीं दिखाई जाती, कभी-कभी दैनिक जीवन

में रावण की भी राम पर विजय होती है। हम नित्य देखते हैं कि धर्मात्मा मनुष्य तो घोर यातनाओं को सहन करते है और दुष्ट पुरुष चैन की वंशी बजाते है। पश्चिम के कलाकार तो इसको इसी भाँति दिखा कर छोड़ देते हैं, परन्तु प्रेमचन्द का कहना है कि यदि साहित्य मे भी राम पर रावण की विजय दिखाई जायगी तो इसका परिणाम कितना अनर्थकारी होगा। धर्मात्मा लोग धर्म करना छोड़ देंगे, लोग नास्तिक हो जायँगे और समाज का नैतिक पतन हो जायगा। साहित्य का उद्देश्य नैतिक पतन नही वरन् नैतिक उत्थान करना है। अत. प्रेमचन्द अपने चरित्रो का यथातथ्य चित्र खींचते हुए भी उसकी समाप्ति आदर्शात्मक ढंग से करते हैं। उन्होने अपने 'उपन्यास' नामक लेख मे लिखा भी है:—'जहाँ यथार्थ और आदर्श का साथ-साथ समावेश मिलता है, वही उच्चकोटि की रचना है, और उसे हम आदर्शोन्मुख यथार्थवाद कहते है। आदर्श को सजीव बनाने के लिए यथार्थ का समावेश होना चाहिए। जो अपने सच्चरित्र और सद्व्यवहार से मोहित कर ले वही उच्च कोटि का चरित्र है।"

यही आदर्शोन्मुख यथार्थवाद इनकी सभी कहानियों में पाया जाता है। नमक का दरोगा, परीक्षा, वह दो बहनें, पशु से मनुष्य, दुस्साहस, सुजान भगत, पंच परमेश्वर, आदि इनकी सफल आदर्शात्मिक कहानियाँ है। कहीं-कहीं इन्होंने यथार्थ चित्रण करके ही छोड़ दिया है, जैसे 'शतरंज के खिलाड़ी', 'कफन', 'सत्याग्रह'। यहाँ आदर्श का विरोध अच्छा नहीं जॅचता है। इसलिए प्रत्येक

जगह आदर्श का समावेश अच्छा नहीं लगता। कहीं-कहीं इस आदर्श का समावेश अस्वाभाविक लगता है। कहीं-कहीं इस आदर्श के फेर में पड़कर चरित्रों की स्वाभाविकता नष्ट कर दी गई है। जैसे 'मंदिर और मस्जिद', 'दीक्षा', 'विनोद', 'आदर्श-विरोध' आदि में बलात् आदर्शात्मकता का समावेश कराया गया है। 'मंदिर और मसजिद' में चौधरी रैयत अली का हिन्दू जागीरदार भजन सिंह पर अटूट विश्वास रखना, यहाँ तक कि उनके दामाद के भजनसिंह द्वारा मारे जाने पर भी उसी की तरफ से पैरवी करना, समस्त जाति से वैर लेना किसको काल्पनिक न मालूम होगा? यह हिन्दू-मुसलिम के मेल का आदर्श दिखाने के लिए किया गया है। कहने का तात्पर्य यह है कि आदर्श और यथार्थ का उचित ढंग से समन्वय होना चाहिए, जैसा कि प्रेमचन्द ने अपनी अधिकांश कहानियों में किया है। उनकी रचना में तो और कुशलता की आवश्यक्ता होती है।

कथोपकथनः—घटनाओं को प्रगतिशील बनाना और पात्रों के स्वभाव पर पूरा पूरा प्रकाश डालना ही कथोपकथन का मुख्य उद्देश्य है। कहानी की प्रभावोत्पादकता तथा कला श्रेष्ठता एक सफल और नियंत्रित कथोपकथन पर निर्भर रहती है। अतः परिस्थिति और प्रभाव के अनुकूल एक उचित कथोपकथन का उपयोग बड़ा ही कठिन काम है। और उन कहानियों में तो, जो एक-मात्र कथोपकथन के आधार पर ही लिखी जाती हैं, यह और भी कठिन कार्य है।

प्रेमचन्द की आरम्भिक तथा कुछ बाद की कहानियों में सफल कथोपकथन का निर्माण नहीं हो सका है। यह असफलता कथोपकथन के अनावश्यक प्रसार के कारण हैं। कहीं-कहीं तो चरित्रों के मुख से सिद्धान्तों के प्रतिपादन करने में कथानक की तरह कथोपकथन बहुत ही दीर्घ हो जाता है। जैसे 'पशु से मनुष्य' नामक कहानी में डाक्टर और मेहता का साम्यवाद पर विचार-विमर्श करना कथोपकथन को शिथिल बना देता है। ऐसे ही अनियंत्रित-कथोपकथन अलग्योझा, घर जमाई, ज्योति, लांछन, तावान, न्याय, दो वैलों की कथा, निमंत्रण, और लाग-डॉट आदि कहानियों मे मिलते है। ऐसे स्थल पर कहानी की प्रगति मे बाधा पड़ती है।

कथोपकथन का यह असफल और शिथिल रूप प्रेमचन्द की सभी कहानियों में नहीं पाया जाता। उनकी अधिकांश कहानियों मे कथोपकथन का कहानी-कला के आदर्श रूप में समावेश हुआ है और वहाँ एक भी वाक्य निरर्थक नहीं मालूम पड़ता है। 'शतरंज के खिलाड़ी', 'सुहाग की रात', 'दरोगा जी', 'प्रायश्चित्त', 'लांछन' और 'डिमांस्ट्रेशन', आदि कहानियों में बड़े ही सफल कथोपकथन का प्रयोग किया गया है। उदाहरण के लिए 'सुहाग की रात' की रात सुभद्रा और युवती का वार्तालाप का स्वरूप देखिए :—

'युवती ने कृतज्ञता का भाव प्रकट करके कहा, "इनके पति

इस समय जर्मनी में हैं' केशव ने आँखे फाड़ कर देखा पर कुछ बोला नहीं।

युवती ने फिर कहा—"बेचारी संगीत के पाठ पढ़ा कर और कपड़े सीकर अपना निर्वाह करती है। वह महाशय यहाँ आ जाते तो उन्हें इनके सौभाग्य पर बधाई देती।

केशव इस पर भी कुछ न बोल सका, पर सुभद्रा ने मुसकिरा कहा—'वह मुझसे रूठे हुए है, बधाई पाकर और भी झल्लाते।

युवती ने आश्चर्य से कहा—'तुम उन्हीं के प्रेम में यहाँ आई, अपना घर-बार छोडा, यहाँ मिहनत, मजदूरी करके निर्वाह कर रही हो, फिर भी वह तुमसे रूठे हुए हैं! आश्चर्य! सुभद्रा ने उसी भाँति प्रसन्न मुख से कहा 'पुरुष प्रकृति ही आश्चर्य का विषय है, चाहे मि० केशव इसे स्वीकार न करें।"

उपर्युक्त कथोपकथन किस प्रकार की नाटकीय शैली, व्यंग्य और सार्थकता से पूर्ण है। अब निम्न वर्ग के पात्रों की बात-चीत का एक उदाहरण 'सुजान भगत' में से लीजिए.—

बुलाकी–तुम तो जरा-जरा-सी बात पर तिनक-जाते हो। सच कहा है बुढ़ापे मे आदमी की बुद्धि मारी जाती है। भोला ने तो इतना ही कहा कि इतनी भीख मत ले जाओ, या और कुछ?

सुजान—हाँ बेचारा इतना ही कह कर रह गया। तुम्हें तो मजा तब आता जब वह ऊपर से दो-चार डंडे लगा देता। क्यो? अगर यही अभिलाषा है, तो उसे भी पूरी कर लो। भोला खा चुका

होगा। बुला लाओ नहीं, भोला को क्यों बुलाती हो, तुम्हीं न जमा दो, दो चार हाथ। इतनी कसर है वह भी पूरी हो जायेगी।

बुलाकी—हाँ और क्या यही तो नारी का धरम ही है, अपने भाग सराहो कि मुझ जैसी सीधी औरत पा ली। जिस बल चाहते हो बिठाते हो। ऐसी मुँह जोर होती, तो तुम्हारे घर में एक दिन निबाह न होता।'

उपर्युक्त कथोपकथन कितने उपयुक्त ढंग से एक ग्रामीण पति-पत्नी के बीच स्वाभाविक रीति से हो रहा है। भाषा की सरलता, पग-पग पर ग्रामीण मुहाविरों का सुन्दर सामजस्य, हास्य और व्यंग्य का सम्मिश्रण आदि इसकी प्रधान विशेषताएँ हैं जो एक आदर्श कथोपकथन में होनी चाहिए।

सबसे पहली विशेषता जो प्रेमचन्द की कहानियों के कथोप-कथन में है वह पात्रों के अनुकूल उसका सर्वथा उचित प्रयोग। कोई चरित्र किसी से वार्तालाप करते समय जिस ढंग से जिस श्रेणी की बात कर सकता है, ठीक उसी ढंग का वार्तालाप प्रेम-चन्द उसके द्वारा कराते हैं। विद्वान्, किसान, सेठ, मजदूर, साहब, राजा, क्लर्क और कवि सबके मुँह से ठीक उसी भाषा का प्रयोग कराते हैं, जैसा वह समाज में करता हुआ पाया जाता है। यह बात स्पष्ट रूप से प्रेमचन्द के सूक्ष्म सामाजिक अध्ययन का द्योतक और उनकी विशाल ग्राहिका-शक्ति का परिचायक है। वे प्रत्येक वर्ग के पात्रों से उचित लोकोक्तियों तथा विभिन्न विचारों का भी प्रयोग कराते हैं, जो इनकी पर्यवेक्षण-शक्ति की

उत्कृष्टता का द्योतक है। इनके इस गुण की समता हिन्दी का कोई लेखक नहीं कर सकता।

दूसरी विशेषता इनके कथोपकथन की है उसका प्रचुर नियंत्रित स्वरूप। यद्यपि यह सभी कहानियों में नहीं पाया जाता, परन्तु अधिकांश में मिलता है। ऐसे स्थानों पर एक पात्र के मुख से उतना ही कहलाया गया है, जितनी आवश्यकता है। इसका उदाहरण ऊपर दिया जा चुका है।

तीसरी विशेषता इनकी कहानियों के कथोपकथन की साद्यन्त सुसम्बद्धता है। इसका परिणाम यह होता है कि कथोपकथन की शृंखला एक दूसरे के सहारे जुड़ती हुई कहानी की संवेदना में वृद्धि करती जाती है। वह उखड़ी और टूटी हुई सी नहीं दिखाई पड़ती।

उपर्युक्त विशेषताओं के कारण इनकी कहानियो का कथोपकथन कहानी की स्वाभाविकता को बनाए रखने मे सहयोग देता है, जिससे पाठक का हृदय पात्रों की तत्कालीन दशा के साथ तादात्म्य का अनुभव करते हुए उसमें निमज्जित हो जाता है। यह तादात्म्य की अनुभूति उत्पन्न करना ही कला की उच्चता का उदाहरण है और यही कारण है कि प्रेमचन्द की कहानियाँ लोकप्रिय हुई है।

वातावरण का चित्रण और वर्णन

कहानी के उपर्युक्त अन्य अंगो की तरह वातावरण के सम्यक्

चित्रण और वर्णन में भी प्रेमचन्द पटु हैं। जीवन तथा जगत की किसी परिस्थिति का चित्र खींचने के लिए, उसके प्रत्यक्ष अनुभव की जरूरत होती है। जो वर्णन पुस्तकों को पढ़ कर या दूसरों से सुन कर होता है, उसमें उतनी स्वाभाविकता और सत्यता नहीं रहती जितना स्वयं अनुभूत परिस्थितियों के चित्रण मे रहती है। यद्यपि सभी कार्य-व्यापारों का अनुभव कर लेना साधारण नहीं है तथापि प्रतिभाशील लेखक या कवि के हाथ में पड़कर न अनुभव किए गए दृश्य भी अनुभूत की तरह हो जाते हैं। प्रेमचन्द को दैनिक जीवन के संघर्ष का प्रत्यक्ष अनुभव था, और इसके साथ ही साथ इनकी पर्यवेक्षण शक्ति इतनी तीव्र थी और इनकी प्रतिभा इतनी कुशाग्र कि सभी वस्तुओ का एक सरस और तथ्यपूर्ण वर्णन करना इनके लिए साधारण-सा दिखाई देता है।

परन्तु सजीव या अवसरोपयुक्त वर्णन करने की कुशलता आरम्भिक कहानियों में उतनी न थी, जितनी बाद की कहानियों में। आरम्भिक कहानियों का वर्णन एक अपरिपक्व कहानीकार या गाथाकार के रूप में पाया जाता है, जिसमे घटनाओ का आधिक्य और मनोभावो और परिस्थितियो से उत्पन्न होने वाले अंतर्द्वन्द्वों की न्यूनता थी। किसान के खलिहान में फैलाए हुए विभिन्न प्रकार के अन्नों के डंठल के समान उसमें घटनाओं का आधिक्य तो था, परन्तु क्रम और सम्बद्धता न थी। प्रेमचन्द की किसी भी आरम्भिक कहानी के उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो

सकती है। 'नव-निधि' संग्रह में 'पाप का अग्निकुण्ड' नामक कहानी में एक स्थल पर वर्णन देखिए :—

'आज राजनन्दनी सती होने जा रही है, उसने सोलहो शृङ्गार किए हैं और माँग मोतियों से भरवाई है। कलाई में सोहाग का कंगन है, पैरों में महावर लगाया है, और लाल चुनरी ओढ़ी है। उसके अंग से सुगन्धि उड़ रही है। क्योंकि वह आज सती होने जा रही है।'

इस वर्णन में एक साधारण पाठक भी त्रुटि और अपरिपक्वता का आभास पाएगा, विशेषतया जब वह प्रेमचन्द की आगे की कहानियों से इसकी तुलना करेगा। थोड़े ही समय पश्चात् उनकी कहानी के वर्णन में पूर्ण कला पाई जाती है। 'शतरंज के खिलाड़ी' नामक कहानी में तत्कालीन वातावरण का चित्रण देखिए, जिसमें लखनऊ के नवाबी राज्य के सन्ध्या-काल का चित्र खींचा गया है।

'वाजिदअली शाह का समय था। लखनऊ विलासिता के रंग में डूबा था। छोटे, बड़े, अमीर, गरीब सभी विलास में डूबे थे। कोई नाटक और गान की मजलिस सजाता था तो कोई अफीम के पिनक के ही मजे लेता था! जीवन के प्रत्येक विभाग में आमोद-प्रमोद का प्राधान्य था। शासन-विभाग में, साहित्य-क्षेत्र में, सामाजिक व्यवस्था में, कला कौशल में, उद्योग-धन्धों मे, आचार-विचार में सर्वत्र विलासिता व्याप्त हो रही थी। राज-कर्मचारी विरह-वासना में, व्यवसायी सूरमे, इत्र, मिस्सी,

और उबटन का रोजगार करने में लिप्त थे। सभी के अङ्गों में विलासिता का मद छाया था। संसार में क्या हो रहा है, इसकी किसी को खबर न थी। बटेर लड़ रहे है, तीतरों के लिए पाली बदी जा रही है। कहीं चौसर बिछी हुई है, पौ बारह का शोर मचा हुआ है। कहीं शतरंज का घोर संग्राम छिड़ा हुआ है। राजा से लेकर रंक तक इसी धुन में मस्त थे। यहाँ तक की फकीरो को पैसे मिलते थे तो वे रोटियाँ न लेकर, अफीम खाते या मदक पीते। शतरंज, तारा, गजीफा खेलने से बुद्धि तीव्र होती है, विचार-शक्ति का विकास होता है, पेचीदा मामलों को समझने की आदत पड़ जाती है, ये दलीलें जोरों के साथ पेश की जाती थीं।'

एक छोटे से पैराग्राफ के द्वारा अवध की नवाबी राज्य के पतन का कितना स्पष्ट और सजीव चित्र इस वर्णन द्वारा प्राप्त होता है। इसमें केवल घटनाएँ ही नही, वरन् उनसे उद्भूत परिस्थितियों का चित्रण भी है।

अन्तिम कहानियों मे तो वर्णन करने की क्षमता पूर्णता को प्राप्त हो गई है। उनमें थोड़े शब्दों में अधिक कह देने की, तथा विशेष प्रभावान्वित कर देने की समर्थता आ गई है।

किसी चरित्र के मनोभावों के चित्रण में तो प्रेमचन्द सिद्ध-हस्त है। उदाहरण के लिए 'रियासत का दीवान' नामक कहानी से एक भारतीय नरेश के क्रोध का वर्णन देखिए—

'राजा साहब अपने किसी काम की आलोचना नहीं सह

सकते थे। उनका क्रोध पहिले झिरहों के रूप में निकलता था। फिर तर्क का आधार धारण कर लेता, अन्त में भूकम्प के आवेश की भाँति उबल पड़ता था। जिससे उनका स्थूल शरीर, कुरसी और मेज सभी में कम्पन होने लगता था। तिरछी आँखों से देखकर बोलेः—

"क्या हानि होगी जरा सुनूँ?

जयकृष्ण समझ गया कि क्रोध की मशीन चक्कर में है और घातक स्फोट होने ही वाला है। सँभल कर बोला—इसे आप मुझसे ज्यादा समझ सकते है।

'आप बुरा मान जायँगे।'

'क्या तुम समझते हो कि मै बारूद का ढेर हूँ' इत्यादि।

इसी तरह परिस्थिति विशेष में किसी पात्र के लिए एक दो वातावरण कितना विषम और दुख-दायक हो जाता है, इसका चित्रण 'सुहाग की रात' में देखिए जब सुभद्रा अपने पति केशव को दूसरी स्त्री से विवाह करते हुए देखती हैः—

'संध्या का समय था। आर्य्य मन्दिर के आँगन में वर और वधू इष्ट-मित्रों के साथ बैठे हुए थे। विवाह का संस्कार भी हो रहा था। उसी समय सुभद्रा पहुँची और बरामदे में आकर एक खम्भे के आड़ में इस भाँति खड़ी हो गई थी कि केशव का मुँह उसके सामने हो। उसकी आँखों में वह दृश्य खींच गया, जब आज के तीन साल पहले, उसने इसी भाँति केशव को मण्डप में बैठे हुए आड़ से देखा था। तब उसका हृदय कितना उच्छ्वसित

हो रहा था। अन्तःस्थल में गुदगुदी सी हो रही थी। कितना अपार अनुराग था, कितनी असीम अभिलाषाएँ थीं, मानो जीवन का प्रभात उदय हो रहा हो। जीवन मधुर संगीत की भांति सुखद था, भविष्य उषा–स्वप्न की भाँति सुन्दर। क्या यह वही केशव है? सुभद्रा को ऐसा भ्रम हुआ, मानो यह केशव नहीं। हाँ यह वह केशव नहीं था। यह उसी रूप और नाम का कोई दूसरा मनुष्य था। उसे देखकर वह उसी भाँति निस्पंद, निश्चल, खड़ी है, मानों कोई अपरिचित व्यक्ति हो। वह इर्ष्याग्नि, जिसमें वह जली जा रही थी, वह हिंसा-कल्पना, जो उसे यहाँ तक लाई थी, मानो एक दम शांत हो गई। विरक्ति हिंसा से भी अधिक हिंसात्मक होती है, सुभद्रा की हिंसा-कल्पना में एक प्रकार का ममत्व था, पर अब वह ममत्व नहीं है। वह उसका नहीं है, उसे अब परवाह नहीं उस पर अब किसका अधिकार होता है।' हमारे देश के दफ्तरों का एक चित्र देखिए :—

'दफ्तर में जरा देर से आना अफसरों की शान है। जितना ही बड़ा अधिकारी होता है उतनी ही देर से आता है, और उतने ही सबेरे जाता है। चपरासी की हाजिरी चौबीसों घंटे की, वह छुट्टी भी नहीं जा सकता। उसे अपना एवज देना पड़ता है। खैर जब बरेली जिला बोर्ड के हेड क्लर्क बाबू मंदारी लाल ग्यारह बजे दफ्तर आए, तब दफ्तर मानो नींद से जाग उठा। चपरासी ने दौड़ कर पैर गाड़ी ली, अरदली

ने दौड़ कर कमरे की चिक उठा दी और जमादार ने डाक की किश्ती मेज पर लाकर रख दी।'

कितना यथातथ्य वर्णन एक दफ्तर का दिया गया है।

कहानियो के वर्णन के सम्बन्ध मे एक बात और ध्यान देने की है। जिस प्रकार चरित्रों के चित्रण और कथा-वस्तु के चयन में प्रेमचन्द की वृत्ति निम्न वर्ग की ओर अधिक रमी है, उसी प्रकार वातावरण के वर्णन में भी ! भारतीय गाँवों का वर्णन देखिए, आपके सामने बिलकुल वहाँ का चित्र खड़ा हो जायगा। 'सप्त सरोज' संग्रह की 'उपदेश' नामक कहानी में एक भारतीय खलिहान का वर्णन देखिए :—

'वहाँ आम के वृक्षों के नीचे, किसानो की कमाई के सुनहरे ढेर लगे हुए थे। चारों ओर भूसे की आँधी सी उड़ रही थी। बैल अनाज ढोते थे, और मन चाहते भूसे में मुँह डालकर अनाज को एक गाल खा लेते थे। गाँव के बढ़ई और चमार, धोबी, कुम्हार अपना वार्षिक कर उगाहने के लिए जमा थे। एक ओर नट ढोल बजा-बजाकर अपना कर्तव्य दिखला रहा था। कवीश्वर महाशय की अतुल काव्य-शक्ति आज उमड़ पड़ी थी।

जिसने जीवन में किसी देहात के खलिहान का दृश्य देखा होगा, उसे इस वर्णन का एक शब्द भी व्यर्थ न मिलेगा।

उसी प्रकार 'पंच परमेश्वर' में गाँवों के झगड़ों का, 'ईदगाह' में देहाती मुसलमान परिवार का, 'गुल्ली डण्डा' में देहाती खेलो का यथातथ्य वर्णन किया है।

परन्तु वास्तविक तथा प्रभावोत्पादक होते हुए भी प्रेमचन्द की वर्णन-शैली का सबसे बड़ा दोष है उसका अनावश्यक प्रसार करना। ऐसे स्थानों पर पाठकों का मन तो नहीं ऊबता, परन्तु कहानी की एकतथ्यता तथा संवेदना मे शैथिल्य आ जाता है। प्रेमचन्द की वर्णन-शैली का गुण कहिए या दोष, वे जिस किसी वस्तु या परिस्थिति को लेते हैं, उसका सांगोपांग खाका खीचने में तन्मय हो जाते हैं। प्रेमचन्द की पचासों कहानियाँ इस प्रकार के वर्णनों से भरी पड़ी है। वर्णन करते समय न तो लेखनी रुकती है न इससे इनका पेट ही भरता है। कला की दृष्टि से यह एक बहुत बड़ा दोष है, क्योंकि वर्णन में वैसे नियंत्रण और संयम होना चाहिए जैसे जीवन में। परन्तु वर्णन की यह परिपाटी संसार के और देशों के अमर कलाकारों में भी पाई जाती है। शेक्सपियर भी अपने पात्रों के स्वागत भाषणों मे अपने को भूल जाता है। इसी प्रकार वाल्टर स्काट उपन्यासों में परिस्थिति वा चित्र दिखाते हुए समय का ख्याल छोड़ देते है। परन्तु ऐसा कहने से यहाँ हम प्रेमचन्द का समर्थन नहीं कर रहे हैं। फिर भी नाटक और उपन्यास का क्षेत्र ही और है, और कहानी का और। सफल कहानीकार परिस्थिति तथा संवेदना को सजीव बनाने के लिए आवश्यकता से अधिक कुछ भी नहीं कहता। प्रेमचन्द की कहानी-कला का यही दोष है। इसी के कारण 'डपोर शंख',

'दो सखियाँ', 'मन्दिर और मसजिद' और 'कुसुम' आदि कहानियाँ एक छोटे उपन्यास के आकार की हो गई हैं।

इतना होते हुए भी कहानियों के वर्णन की सजीवता और स्वाभाविकता में तनिक भी कमी नहीं आने पाई है जिसका ऊपर पर्याप्त उल्लेख हो चुका है। इतना तो अवश्य कहा जा सकता है कि कहानी के आकर की कोई परिमित सीमा नहीं है। वह पांच से आठ पृष्ठों तक में समाप्त हो सकती है और इससे भी कुछ अधिक पृष्ठ ले सकती है। सबसे प्रधान बात जो उसमे होनी चाहिए, वह है एक संवेदना का समावेश, आकर्षण के द्वारा रोचकता का उत्पन्न करना जिससे पाठक एक निगाह मे सारी कहानी समाप्त कर दे। हाँ कहानी का आकार लम्बा नहीं होना चाहिए। 'गुलेरी जी की 'उसने कहा था' नाम की कहानी यदि बहुत अधिक नहीं, तो कुछ लम्बी अवश्य है, फिर भी कला तथा सवेदना की दृष्टि से वह सबसे उच्च कहानी कही जा सकती है। इसका कारण यही है कि इसकी वर्णन-शैली मे सजीवता है। यद्यपि प्रेमचन्द की सभी कहानियाँ इतनी सफल नहीं है तथापि उन सब स्थानों पर, वर्णन जहाँ दीर्घ हो गया है, पाठको को नहीं खटकता, प्रत्युत उसमें एक आनन्द ही मिलता है।

पांचवां अध्याय

प्रेमचन्द की कहानी-कला की आधारभूमि तथा उसपर बाहरी प्रभाव

कवि और लेखक की रचना पर अन्तर्जगत् और बहिर्जगत् दोनों का विशेष प्रभाव पड़ता है। अन्तर्जगत् से हमारा तात्पर्य उसकी मानसिक पृष्ठ-भूमि से है जो लालन-पालन, शिक्षा-दीक्षा तथा पूर्व संस्कारों से तैयार होती है। बाहरी संसार के घटना-चक्रों की चाहे जो भी गति-विधि हो, रचनाकार अपने को अपने पूर्वगत संस्कारों से अलग नहीं कर सकता, इसलिए उसकी रचना पर भी उसकी अमिट छाप पड़ ही जाती है। किसी भी लेखक की रचना को देख कर हमें उसकी मानसिक पृष्ठ-भूमि का, उसके विकास, स्वभाव, तथा परिस्थिति का, यहाँ तक कि उसके पूरे व्यक्तित्व के इतिहास का पता चल जाता है। कालिदास और शेक्सपियर की जन्मतिथि तथा जीवन के सम्बन्ध में भले ही विवाद और मतभेद हों, पर उनके अन्तर्जगत् का सच्चा परिचय आज हमें उनके ग्रंथों से ही मिलता है। इसी कसौटी पर यदि हम प्रेमचन्द को कसें तो उनके व्यक्तित्व का पूरा चित्र हम उनके ग्रन्थों से पा जाते हैं। भाग्यवश वे हमारे इतने निकट हुए हैं और उनके जीवन की भीतरी तथा बाहरी बातों से हम इतने परिचित हैं, कि उसका पूरा विवेचन हो सकता है।

प्रेमचन्द का जन्म एक कायस्थ परिवार में हुआ था, जहाँ प्रायः बच्चों की शिक्षा-दीक्षा उर्दू और फारसी में ही दी जाती थी। चाहे मुसलमान शासकों के अधिक संपर्क का प्रभाव कहिए या कोई अन्य प्रभाव, परन्तु कायस्थ-समाज का बौद्धिक-वातावरण (Intellectual Environment) मुसलिम संस्कृति के आधार पर ही बनता था। अपने भोजन और रहन-सहन में तो पूरे हिन्दू परन्तु विचारों मे विदेशी, इस प्रकार एक मिले-जुले वातावरण में प्रेमचन्द का जन्म हुआ। जैसा कि उन्होने स्वयं कहा है 'वोस्ताँ गुलिस्ता' से उनकी शिक्षा का सूत्रपात हुआ। उनका प्रथम परिचय उर्दू-भाषा और साहित्य से हुआ। यही कारण है कि उर्दू मे ही लिखने को वे पहले उत्सुक हुए। इन बातों को दृष्टि मे रख कर यदि हम देखें तो प्रेमचन्द की अधिकाश कहानियाँ इसी मुसलमानी संस्कृति का आधार लिए हुए है। मुसलिम सभ्यता का जो चित्रण अपनी इस घनिष्ठता के कारण प्रेमचन्द कर सके है वह शायद ही किसी लेखक मे मिले। तत्कालीन समाज तथा परिस्थिति का जीता-जागता चित्र सामने खिंच जाता है। ईदगाह, आशियाँ वरबाद, आह वेकस, जिहाद, फातिहा, शतरंज के खिलाड़ी, वज्रपात, लैला, दिल की रानी, क्षमा आदि कहानियाँ इसके उदाहरण है। इन कहानियों के पढ़ने से विदित होता है कि प्रेमचन्द ने कितनी गहराई से मुसलमानी संस्कृति तथा विचारों का गहरा अध्ययन किया था। 'क्षमा' कहानी में मुसलमानों और ईसाइयों का संघर्षमय चित्रण, वज्रपात मे

नादिरशाह के अत्याचार तथा अमामे बदलने की प्रथा, शतरंज के खिलाड़ी में उत्तर कालीन मुगलों की चरम विलासिता का चित्र प्रेमचन्द के मुसलिम संस्कृति के अध्ययन के परिचायक हैं। उनकी ऐतिहासिक कहानियों पर भी इसका प्रभाव पड़ा है।

परन्तु सब से अधिक प्रभाव जो इस उर्दू भाषा और अध्ययन का उनकी कहानियो पर पड़ा, वह है प्रेमचन्द की रचना-शैली पर। उर्दू का साहित्य चाहे जैसा भी हो, उसकी गद्य-शैली बहुत ही धारावाहिक, सरल, चुस्त तथा मुहाविरेदार होती है। सरल से सरल भाषा में उर्दू का लेखक ऐसी मर्मस्पर्शी बात कह जाता है, जिसे पढ़ कर या सुन कर हम आश्चर्य-चकित रह जाते है। हिन्दी-गद्य-शली में इसका पूर्णतः अभाव था, खास कर उस समय जब प्रेमचन्द हिन्दी-क्षेत्र मे आए। उर्दू की इस मुहाविरेदानी तथा चुस्तगी का हिन्दी गद्य पर अधिक प्रभाव प्रेमचन्द की कहानियों द्वारा पड़ा। कहने का अभिप्राय यह कि इस कायस्थ-परिवार की उर्दू शिक्षा-दीक्षा का प्रेमचन्द के ऊपर बहुत प्रभाव पड़ा जो उनकी रचना में निरन्तर दिखाई देता है। बाद की रचना में उन्होंने समाज के अन्य विचारों को बहुत कुछ अपनाया पर मुसलिम संस्कृति के प्रभाव से इनकी रचना एकदम अछूती न रह सकी। उसने प्रेमचन्द के भाव और भाषा दोनों को प्रभावित किया।

अब हम कुछ अन्य मुख्य व्यक्तियों और विचारों की चर्चा करेंगे जिनका प्रभाव प्रेमचन्द की रचना पर स्पष्ट दिखाई

पड़ता है। सब से प्रधान प्रभाव बंगला साहित्य और स्वर्गीय रवीन्द्रनाथ टैगोर के गल्पों का पड़ा था। पिछले अध्याय में बताया जा चुका है कि हिन्दी की कहानियों का ढाँचा पाश्चात्य देशों के साहित्य से लिया गया है। ये कहानियाँ बंगला-साहित्य से अनूदित होकर हमारे यहाँ आईं। पश्चिमी साहित्य के सब से अधिक सम्पर्क में बंगला-साहित्य ही पहले आया। बंगला-साहित्य में टैगोर सर्वश्रेष्ठ कलाकार हो गए है। जिस समय प्रेमचन्दजी ने लिखना प्रारम्भ किया टैगोर के गल्पों की बड़ी धूम थी। स्वयं उन्होंने भी उसी के अनुकरण पर कहानियों का लिखना प्रारम्भ कर दिया। अपने 'जीवन-सार' नामक लेख में वे स्वयं लिखते हैं :—

"मैंने पहले पहल १९०७ में गल्पें लिखना शुरू किया। डाक्टर रवीन्द्रनाथ की कई गल्पें पढ़ी थीं और उनका उर्दू अनुवाद भी कई पत्रिकाओं में छपवाया था।" इस प्रकार बंगला-साहित्य और टैगोर की कहानियो का प्रेमचन्द की रचना पर अधिक प्रभाव पड़ा जिससे उनकी कहानियों का ढाँचा कलात्मक, हो गया, उसमें कल्पना के साथ यथार्थवाद का संमिश्रण हुआ।

प्रेमचन्द ने पश्चिम से कहानी का ढाँचा लिया, उर्दू से एक सरल और धारावाहिक शैली ली परन्तु उन्हें अपनी रचना के लिए अब एक आदर्श की आवश्यकता थी जो उसे समयानुकूल और सुरुचिपूर्ण बनावे। इसके लिए वे विश्ववन्द्य, सत्य और अहिंसा के भगवान् महात्मा गान्धी के ऋणी हैं। महात्मा गांधी

का अकेला व्यक्तित्व ही इतिहास का एक जाज्वल्यमान युग है। भारत के असंख्य नरनारियों के जीवन के ध्येय, विचारों तथा आदर्शों में सेवाग्राम के इस संत ने कितना उथल-पुथल मचाया है कौन कह सकता है। शतियों की दासता की मोहनिद्रा मे सोते हुए भारतवासियों को इस कर्मवीर ने जागरण का सन्देश दिया। पाश्चात्य साभ्यता की चमक-दमक, टाई-कालर में भूले कितने ही विद्वानों और राजनीतिज्ञों को स्वदेश और स्वदेशी-प्रेम की ओर झुकाया। अंग्रेजी भाषा को ही मातृ-भाषा के समान आदर करने वाले विद्वानों को अपनी हिन्दी और उर्दू की ओर आकृष्ट किया। रुढ़िगत और अन्धविश्वास से पूर्ण हमारे हिन्दू-समाज मे निर्दलित उन हरिजनों को अपनाने का संदेश सुनाया जिन्हें हिन्दू अछूत कह कर पशु के समान समझने लगा था। इसी नरनारायण ने उन्हें हृदय से लगा कर उन्हें नैतिक और सामाजिक अधिकार दिलाए और हमारे समाज की रुढ़ियों को दूर किया। भारतीय जीवन के कणकण में, आचार-विचार, सभ्यता, स्वतन्त्रा, साहित्य, और भाषा के प्रत्येक क्षेत्र में महात्मा गांधी का प्रभाव कितना शक्तिशाली और अमिट है, इसको व्यक्त करने के लिए एक स्वतन्त्र ग्रंथ भी शायद अपर्याप्त हो। गाँधी का अकेला व्यक्तित्व ही एक युग है—उनका जीवन एक महाकाव्य है जिससे सारा युग प्रभावित हुआ है। भारत के महान् पुरुषों की आज सब से बड़ी संस्था कांग्रेस कही जा सकती है। कांग्रेस के तीन-

चौथाई व्यक्तियों के इस संस्था में आने का श्रेय महात्मा गाँधी को ही है।

साहित्य के क्षेत्र में भी मानवता के इस अवतार ने युगान्तर उपस्थित किया है। गाधी के ही प्रभाव से आज हिन्दी को हिन्द-वासियों ने इस प्रेम से अपनाया है—आज उसमें इतने महान् साहित्य का सर्जन हुआ है। गद्यपद्य दानों के निर्माण में गाँधी ने ही साहित्यिक जगत् को एक आदर्श दिया है। कल्पना और नग्न शृङ्गार के पथ से हटा कर गाँधी ने ही हमारे साहित्य को यथार्थदर्शी बनाया तथा साहित्यिकों को समाज, मानवता, स्वतंत्रता, संघटन तथा मानव मे ईश्वर के देखने की दिव्यदृष्टि दी है। प्रेमचन्द की रचना-कला पर भी इस महान् व्यक्ति का शक्तिशाली प्रभाव पड़ा है। इस प्रभाव का हम विस्तार से वर्णन करेंगे।

प्रेमचन्द के इस साहित्य-क्षेत्र में आने के मूल प्रेरक है महात्मा गाँधी और उनके व्यक्तित्व से बना हुआ वातावरण है। जिस समय प्रेमचंद का कहानी लिखना प्रारम्भ हुआ था उस समय गांधीजी के जागरण-संदेश ने भारतीय राजनीतिक वातावरण में विशेष चहल-पहल ला दी थी। गांधीजी का असहयोग आन्दोलन चल रहा था। इस आन्दोलन का कांग्रेस और देश के इतिहास में बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है। कितने प्रतिष्ठाप्राप्त देश के लोग सरकारी नौकरियाँ छोड़कर स्वतन्त्रता के संग्राम मे कूद पड़े और सदा के लिए देश-प्रेमी वन गए। उनका जीवन कुछ से कुछ हो गया। इन्हीं महानुभावों में प्रेमचन्द्रजी भी थे। अध्ययन के पश्चात् वे एक

सरकारी स्कूल के अध्यापक थे, फिर स्कूलों के डिप्टीइन्सपेक्टर हुए। गाँधीजी के असहयोग आन्दोलन से प्रभावित होकर वे भी स्वतन्त्रता के संग्राम में कूद पड़े और सरकारी नौकरी त्याग कर उन्होंने लेखनी द्वारा समाज-सेवा का व्रत लिया। 'जीवन-सार' नामक लेख में वे स्वयं कहते हैं।'

'मेरी सबसे पहली कहानी का नाम था 'संसार का सबसे अनमोल रतन' जो १९०७ के 'जमाना' में छपी। इसके बाद चार-पाँच कहानियाँ, और लिखीं। पाँच कहानियों का संग्रह १९०९ में 'शोजेवतन' के नाम से छपा। उस समय बंग-भंग का आन्दोलन चल रहा था। कांग्रेस में गर्म दल की सृष्टि हो चुकी थी। इन पाँच कहानियों में स्वदेश-प्रेम की महिमा गाई गई थी। परिणामतया ब्रिटिश गवर्नमेन्ट ने यह पुस्तक जप्त कर ली और इसकी १५० प्रतियाँ जला दी गईं। साथ ही साथ लेखक को पुनः ऐसा न लिखने का कड़ा आदेश मिला।'

उपर्युक्त कथन से यह स्पष्ट है कि किस प्रकार गाँधी जी तथा कांग्रेस से प्रभावित होकर प्रेमचन्द ने साहित्य द्वारा देश और समाज की सेवा का व्रत लिया और वे इस क्षेत्र में आए। अब तक कहानी-लेखकों की कथावस्तु ऐतिहासिक, काल्पनिक और शृङ्गारिक रहती थी, अब कथा-साहित्य का सम्बन्ध समाज से हुआ, और वह भी समाज के मध्यम और निम्नवर्ग से। कथा-साहित्य के इतिहास में यह बहुत बड़ा परिवर्तन था और इसी रूप को ले

कर प्रेमचन्दजी आए। प्रेमजन्द ने अपनी कहानियों और उपन्यासों को समाज के मध्यमवर्ग तथा विशेषकर निम्नवर्ग से जो लिया, यह गांधीजी के ही प्रभाव के कारण। गांधीजी ने भारतीय राजनीतिकों तथा साहित्यिकों को दिखाया कि भारत शहरों से नहीं वरन् गाँवों में बसा है, अतएव भारत की स्वतन्त्रता गाँवों के सुधार और उत्थान से ही हो सकती है। प्रेमचन्द ने भारतीय गाँवों के भीतर बड़ी गहराई से झककर देखा। देहातियों के निष्कपट आचार-विचार, सीधी-सादी रहन-सहन को दिखाते हुए भी उन्होंने अपनी कहानियो मे दिखाया कि शिक्षा को कमी से दिहात मे आज भी लोग अंधविश्वास, झंख, रोग, संकट तथा अज्ञता के शिकार बने हैं और जब तक उनमें ज्ञान और शिक्षा का प्रचार न होगा, उनका उत्थान कभी नहीं हो सकता। साराश यह है कि समाज के निम्नवर्ग का बड़ा ही हृदयग्राही सूक्ष्म, तथा आदर्श चित्रण प्रेमचन्द ने अपनी कहानियों में किया।

प्रेमचन्द की आधी से अधिक कहानियाँ निम्न तथा ग्रामीणों के चरित्रों से संबद्ध हैं। भारतीय ग्रामों का इतना जीता-जागता तथा सूक्ष्म चित्रण हिन्दी में प्रेमचन्द द्वारा ही आया। उनसे अन्य लेखक और कवि प्रभावित हुए। आज दिन कांग्रेस ने अपनी सुधार की सभी योजनाओं में ग्राम-सुधार, गाँव-हुकूमत, पंचायत आदि को मुख्य रक्खा है। सारांश यह कि नगरों से हटाकर सारा दृष्टिकोण गाँवों की ओर ही केन्द्रित किया है। प्रेमचन्द ने इस प्रकार कितना श्रेयस्कर कार्य किया यह कहने क

आवश्यकता नहीं। अगले अध्याय में प्रेमचन्द के ग्राम-चित्रण पर विस्तार से लिखा जायगा, यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त है कि अपने इस चित्रण में प्रेमचन्द को गांधीजी से ही विशेष प्रेरणा मिली थी। कुछ प्रेरणाएँ पाश्चात्य लेखको और कहानीकारों से भी उन्हें मिली थीं, जैसे रूस के कथाकारों से विशेष कर टालस्टाय से—जिसके सम्बन्ध में आगे बताया जायगा—इन पर काफी-प्रभाव पड़ा।

निम्नवर्ग के समाज का एक प्रधान अंश अछूतों और हरिजनों का है। भारतीय दिहात और दिहातियों पर दृष्टिपात करने से पहले गांधी जी ने अछूतों को अपनाया। हिन्दू-समाज के कट्टर-पन्थियों की रूढ़िगत वर्ण-व्यवस्था ने शतियों से अछूतों के रक्त में दास्य-भावना को इतना दृढ़ कर दिया था कि वे पशु के रूप में परिवर्तित हो गए थे। गाँधीजी ने अछूतों को हृदय से लगाया, उनके प्रति समाज में श्रद्धा, सहानुभूति और विश्वास का भाव उत्पन्न किया, उनकी निर्जीव ठठरियों में नवजीवन का संचार किया, उनके लिए स्वयं अपने सुख और जीवन की आहुति देकर शासक और समाज में उनकी महत्ता सिद्ध की, उन्हें सामाजिक और राजनीतिक अधिकार दिलाए और उन्हें हिन्दू समाज का एक जीवित अंग बना कर के छोड़ा। गाँधीजी के ही प्रभाव से प्रेमचन्द ने भी अछूतों को एक सहानुभूति पूर्ण दृष्टि से देखा है। कट्टर-पंथियों के हाथ से नित्य होने वाले अत्याचारों को लेकर प्रेमचन्द ने अछूतों की सामाजिक दयनीय स्थिति की समस्याओं पर बड़ी ही प्रभावोत्पादक कहानियाँ लिखी हैं। अछूत-

सम्बन्धी उनकी कहानियाँ दो वर्गों में विभाजित की जा सकती है, एक तो वे कहानियाँ जहाँ भारतीय समाज में अछूतों की दयनीय परिस्थिति का चित्रण है। 'कफन', 'सद्गति', 'मन्दिर', 'उद्धार', 'धर्म-पुत्र', 'मन्त्र', 'सत्यता का रहस्य' आदि कहानियाँ इसी वर्ग मे आती है। 'कफन' नामक कहानी में प्रेमचन्द ने बताया है कि एक गाँव में बसने वाले कुछ चमार घोर दरिद्रता के कारण अपने मनुष्यत्व की भावना भी गंवा देते हैं। आकाश-वृत्ति पर जीवन व्यतीत करना इनकी वंश-परम्परा है। कई दिनोंके फाँके के बाद भोजन पाना इनके जीवन का एक नियम-सा हो गया है, परिणामतया स्त्री के मर जाने पर उसके कफन के लिए चन्दा माँगते हैं और उस पैसे को भी खा-पी कर लाश को पड़े रहने देते हैं। 'मन्दिर' नामक कहानी में सुखिया का एकमात्र पुत्र, जो घोर ज्वर से पीड़ित है, इसलिए मर जाता है कि उसके हृदय में यह अभिलाषा जगती है कि शायद ठाकुर जी का दर्शन करने से वह भला-चंगा हो जाय, परन्तु जब वह चोरी से मन्दिर में दर्शन करने जाती है, तो पुजारी जी उसको ऐसे जोर का धक्का देते हैं कि गोद से गिरकर वह पुत्र वहीं समाप्त हो जाता है। इसी प्रकार 'सद्गति' कहानी में एक और चमार इसलिए मर जाता है कि वह निराहार रह कर सत्यनारायण की कथा सुनने के लिए पंडितजी के यहाँ उन्हें बुलाने जाता है। उधर पंडितजी उसे बेगारमे इस तरह लगा देते हैं कि वह काम करते-करते वहीं मर जाता है। नगरों और देहातों में अछूतों की यह नित्य की समस्या है। अछूत-सम्बन्धी

दूसरे वर्ग की कहानियाँ वे हैं जिनमें अछूतों के ऊपर अत्याचार करने वालों की धज्जी प्रेमचन्द ने उड़ाई है। ऐसी कहानियों में दो-एक अछूत पात्र भी आ गए हैं। उदाहरण के लिए ब्राह्मणों और पंडितों को प्रेमचन्द सर्वत्र अपनी कहानियों में ढोंगी, पाखंडी, स्वार्थी और थोथी-वृत्ति का चित्रित करते हैं। 'मन्त्र' कहानी मे हिन्दूसभा के प्रचारक पं० लीलाधर चौबे का वर्णन है वे मध्य प्रान्त में जाकर मुसलिम लीग का विरोध करते है, वहाँ खूब पीटे जाते है, और अन्त में उनका प्राण एक अछूत बचाता है। इसके पश्चात् पंडितजी अपने जीवन का मूलमन्त्र अछूतों की सेवा बना लेते हैं। परिणाम यह होता है कि लीगवाले परास्त हो जाते हैं, वे लोग बिना बुलाए हिन्दू-धर्म में दीक्षित हो कर सम्मिलित होते है और पंडितजी अछूतों की सेवा के बल से लोक-प्रिय बन जाते है। अछूतों की सेवा का यह सन्देश प्रेमचन्द गाँधीजी से ही लेते हैं। सारांश यह है गाँधीजी से प्रेमचन्द, अपने कथा-साहित्य के निर्माण मे भाषा और भाव दोनों की दृष्टि से बहुत अधिक प्रभावित हुए है।

प्रेमचन्द की विचार-परम्परा पर कुछ और संस्थाओं का भी प्रभाव पड़ा है जिसमें आर्य-समाज मुख्य है। समाज की रुढ़ियों और कट्टर-पंथियों के पाखंडों से उनके हृदय में सनातन धर्म के ढोंग से एक अरुचि और घृणा हो गई थी, इसलिए आर्य-समाज की ओर झुके जिससे इनका कथा-साहित्य विशेष प्रभावित सा होता दिखाई पड़ता है। प्रेमचन्द सच्चे सुधारवादी हैं। वे समाज

की रुढ़ियों को दूर कर उसकी जड़ता और अज्ञता को निकाल देना चाहते थे। बाल-विवाह, ब्रह्मभोज, अनमेल विवाह, वृद्ध-विवाह, दहेज, मूर्त्ति-पूजा इत्यादि की अपनी कहानियों मे वे कड़ी आलोचना करते पाए जाते हैं। पंडितों और पुजारियों की तो उन्होंने खूब ही खबर ली है। अपने व्यावहारिक जीवन में भी आर्य-समाज के कई सिद्धान्तों को मानते थे। मूर्ति-पूजा को कौन कहे, उन्हें ईश्वर में भी विश्वास न था। विधवा-विवाह उन्होंने स्वयं किया और बहुत समझ-बूझ कर। सर्वत्र इनकी कहानियो में समाज की कुरीतियों का खंडन हुआ है, और उसमे सुधारवादी दृष्टिकोण का समावेश किया गया है।

प्रेमचन्द के कथा-साहित्य पर भारतीय व्यक्तियों और विचारों का जो प्रभाव पड़ा उस पर बहुत कुछ कहा जा चुका। अब संक्षेप में कुछ पाश्चात्य लेखकों, विशेषकर उन कहानी और उपन्यास के लेखकों का वर्णन किया जायगा जिनसे प्रेमचन्द स्पष्ट प्रभावित होते दिखाई पड़ते है। प्रेमचन्द एक अध्ययनशील व्यक्ति थे, इसलिए पश्चिम के अधिकांश लेखकों की रचनाओं का उन्होंने अध्ययन किया था। ऊख, जोला, मोपाँसा, हार्डी, स्टीवेन्सन, गाल्स वर्थी, वेनेट, शा, टालस्टाय और चेखव इत्यादि के कथा-साहित्य का उन्होंने प्रचुर अध्ययन किया और इनकी बहुत सी विशेषताओं को अपनाया। फ्रांस के लेखकों से आपने यथार्थवाद लिया। परन्तु सब से अधिक प्रेमचन्द टालस्टाय से प्रभावित हुए। टालस्टाय ने रूस में पूँजीपतियों से शोषित दीन कृषक-समाज

का बड़ा ही सुन्दर और संवेदनात्मक चित्र अपनी कहानियों में खींचा है। प्रेमचन्द ने देखा कि रूस और भारत की परिस्थितियों में बहुत कुछ समता है, इसलिए वे भी भारतीय दीन कृषकों के चित्रण की ओर अग्रसर हुए। दूसरी बात, जिसमें प्रेमचन्द्र टाल्स्टाय से प्रभावित होते दिखाई देते हैं, उनका आदर्शवाद है। प्रेमचन्द्र ने इस प्रकार से बहुत कुछ पश्चिम से लिया है जिसको वे स्वयं स्वीकार करते है, परन्तु उन्होंने बराबर भारतीयता की रक्षा करके अपनी मौलिकता का परिचय दिया है। वे प्रत्येक लेखक की विचार-परम्परा में बह कर रँग नहीं उठे है वरन् सदैव अपनी मौलिकता की रक्षा करके उन्होने अपनी कला-कुशलता का परिचय दिया है।

इस प्रकार प्रेमचन्द के जीवन और कथा-साहित्य पर अनेक भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों और लेखकों का प्रभाव पड़ा है। वैसे तो वे स्वयं एक कुशल कलाकार थे, परन्तु इन प्रभावों से उनकी कला निखरती ही गई। कायस्थ-परिवार में पैदा होने से उन्होंने उर्दू से प्रेम किया, मुस्लिम-संस्कृति का अध्ययन किया और उसका अपनी कहानियोंमें सच्चा चित्रण किया। उर्दू की शैली को वे हिन्दी-गद्य में ले आए। टैगोर से उन्होंने कल्पना और यथार्थ का सामंजस्य लिया। महात्मा गाँधी के व्यक्तित्व से त्याग और सेवा की प्रवृत्ति उनमें आई, उनके कथा-साहित्य मे दीन भारतीय किसानों का चित्रण हुआ। आर्य-समाज से प्रभावित होकर सुधार-

वादी दृष्टिकोण ग्रहण किया और पश्चिम से यथार्थवाद को ले कर सब को अपनी प्रतिभा और कला से एक सूत्र में गूँथ कर ऐसा सुघर सामंजस्य स्थापित किया जिससे उनकी रचनाएँ अमर कृति हो गईं।

छठां अध्याय

प्रेमचन्द की कहानियों के ध्येय

जीवन का दृष्टिकोण—प्रेमचन्द की कहानियाँ अधुनिक भारतीय जीवन के प्रतिविम्ब है। आज पूर्व और पश्चिम की संस्कृतियों के संघषे के कारण भारतीय समाज की बड़ी अस्थिर दशा हो गई है। समाज पाश्चात्य सभ्यता को कई रूपो में ग्रहण कर रहा है। पहला वर्ग तो वह है जो अंग्रेजी-शिक्षा और सभ्यता के वातावरण मे पलकर, पाश्चात्य सभ्यता की चमक-दमक तथा प्रलोभनों में पड़ कर उसका इस प्रकार दास बन गया है जैसे वह अपनी भारतीयता से ही घृणा करता है। इस वर्ग के लोग है उच्च पदाधिकारी। दूसरा वर्ग एक दम इसके विरुद्ध विचारवालों का है, जो पाश्चात्य सभ्यता को समझते हुए भी, 'स्वधर्मे निधनं श्रेयः' के सिद्धान्त पर अटल रहकर भारतीय आदर्शों की रक्षा में ही तत्पर रहता है। तीसरा मध्यम वर्ग है, जिसके अनुयायी दोनों संस्कृतियों की आवश्यकतानुसार उपासना करते है। यद्यपि इन वर्गों की कोई सीमा-रेखा नहीं है, तथापि स्थूल दृष्टि से देखने पर भारतीय समाज इन्हीं तोन वर्गों मे बॅटा है।

प्रेमचन्द स्वयं इस सभ्यता के संघर्ष से पूर्ण परिचित और

प्रभावित हुए थे। वे न तो पाश्चात्य सभ्यता के अन्धभक्त थे, न भारतीय समाज की रूढ़ियों के हिमायती। परिणामतया वे पाश्चात्य देशों की सामाजिक व्यवस्था, शिक्षा और शासन को अपनाना तो चाहते हैं परन्तु उतनी ही मात्रा में जितना हमारे समाज को आवश्यक है, अथवा जितनी मात्रा मे समाज अपने आदर्शों को निभा सकता है। उदाहरण के लिए वे स्त्रियों में पर्दा नहीं चाहते थे। इसका उन्होंने 'अहिंसा परोमो धर्मः' आदि कहानियों में विरोध किया है। वे भारतीय स्त्रियों को शिक्षा, विचार-स्वातंत्र्य आदि विषयों का अधिकार देना चाहते हैं, परन्तु उसी हद तक जिससे भारतीय नारी अपने पातिव्रत और सेवा के आदर्श से च्युत न हो जाय। कहने का तात्पर्य यह है कि प्रेमचन्द पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित होते हुए भी, आवश्यकतानुसार उसे ग्रहण करते हुए भी उसकी लकीर के फकीर नहीं होना चाहते। अतः कभी कभी वे अपनी कहानियों में इसकी प्रशंसा करते हुए पाए जाते है। जैसे जहाँ 'सोहाग का शव' मे यह लिखा है—'जभी ये लोग इतने एकाग्र होकर सब काम कर सकते हैं, खेलने का उमंग है, तो काम करने का भी उमंग है। और एक हम हैं कि न हँसते हैं और न काम करते हैं"—वहीं यह भी दिखला देते हैं कि यह सभ्यता ऊपरी चमक-दमक से कितनी भरी और भीतर से खोखली है जिसमें विवाह तथा प्रेम एक प्रकार का समझौता है। पाश्चात्य सभ्यता के गुलामो पर प्रेमचन्द जी खोल कर हँसते हैं। उनकी कई कहानियो में इस उच्च अट्टहास की ध्वनि स्पष्ट सुनाई देती

है। उदाहरण के लिए 'अनुभव', 'शान्ति', 'कुसुम', 'मिसपद्मा', 'उन्माद', 'दो बहनें' आदि कहानियों के नाम लिए जा सकते हैं। 'उन्माद' नामक कहानी में तो पाश्चात्य सभ्यता के खोखलेपन की धज्जी धज्जी तक उड़ा दी गई है। कहानी का कथानक यह है कि मनहर नाम का एक विवाहित युवक इङ्गलैंड शिक्षा प्राप्त करने जाता है और वहाँ जेनी नामक एक महिला से पुनः विवाह कर लेता है। जेनी मनहर को अपनी स्वार्थ-वृत्तियों की पूर्ति का साधन समझ कर बेवकूफ फँसाती है। उसके मुख से बीच में प्रेमचन्द पाश्चात्य नारी के आदर्शों का तत्व भी कहलाते चलते हैं, जैसे एक स्थल पर :—

'जेनी ने अविचलित भाव से कहा—तो क्या तुम समझते थे, मैं भी तुम्हारी हिन्दुस्तानी स्त्री की भांति तुम्हारी लौंडिन बनकर रहूँगी, और तुम्हारे तलवे सहलाऊँगी ? मैं तुम्हें इतना नादान नहीं समझती। अगर तुम्हें हमारी अंग्रेजी सभ्यता की इतनी मोटीसी बात भी नहीं मालूम तो अब मालूम कर लो, कि अंग्रेज स्त्री अपनी रुचि के सिवाय किसी की पाबंद नहीं।'

अन्त में जब मनहर का जीवन जेनी के साथ विषमय हो जाता है तो वह उसे त्याग कर, समस्त सुखों को तिलांजलि देकर फिर अपने टूटे-झोपड़े में जाकर अपनी अर्द्धशिक्षित परन्तु पति-व्रता भारतीय नारी का दामन पकड़ता है और जेनी को एक त्यागपत्र देकर उसके साथ ही साथ पाश्चात्य सभ्यता को भी त्याग देता है। वह जेनी को लिखता है कि 'हम और तुम दोनों

ने भूल की और हमें जल्द से जल्द उस भूल को सुधार लेना चाहिए। समझ का फेर था। उस सभ्यता को दूर से ही सलाम है, जो विनोद और विलास के सामने किसी बंधन को स्वीकार नहीं करती।'

यहां प्रेमचन्द स्वयं पाश्चात्य सभ्यता को दूर ही से सलाम करने का उपदेश देते है, क्योंकि उसकी भित्ति उस उच्छृङ्खलता, असंयम, और भौतिकता की भूमि पर खड़ी है, जो मनुष्य को पतन के गर्त में ले जाने वाली है। अतः उन्होंने इस सभ्यता को हेय ठहरा कर, अपनी ही संस्कृति पर अटल रहने का संदेश अपनी कहानियों से देकर अपने सच्चे भारतीयता के पुजारी होने का परिचय दिया। स्थल स्थल पर सिद्धान्तरूप में भी उन्होंने इसका स्पष्ट उल्लेख किया है। 'प्रेम-द्वादशी' की भूमिका में वे लिखते हैं 'योरप की दृष्टि सुन्दरता पर पड़ी है, पर भारत की सत्य पर। सम्पूर्ण योरप मे मनोरंजनार्थ गल्पें लिखी गईं परन्तु भारत इस आदर्श से सहमत नहीं। नीति और धर्म हमारे जीवन के प्राण है। पराधीन होते हुए भी हमारी सभ्यता उनसे ऊँची है। यथार्थ पर दृष्टि रखने वाला यूरोप आदर्शवादियों से जीवन-संग्राम में बाजी क्यों न ले जाय पर हम अपने परंपरागत संस्कारों को त्याग नहीं सकते।

भारतीयता की रक्षा—इसी भारतीय आदर्शवाद को उन्होंने अपनी जीवनदृष्टि का केन्द्रबिन्दु बनाया, और अपना सन्देश अपनी

कहानियों द्वारा दिया। अतः इसे स्थायी और स्थिर समझ कर फिर से अपनाने का आदेश दिया। वे भारतीय समाज को पूर्ण स्वच्छन्दता देना चाहते थे, अर्थात् उसे प्राचीन कुरीतियों, रूढ़ियों, और प्रथाओं से—पर्दा, बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह, आभूषण-प्रेम, स्थिति से अधिक व्यय करना, पाखंड, धर्मान्धता आदि से—मुक्त करना चाहते थे। सौत, निमंत्रण, शान्ति, मागे की घड़ी, आदि कई कहानियों में इन कुरीतियों की प्रेमचन्द ने निन्दा की है। परन्तु वे इस सीमा तक स्वतन्त्रता नहीं देना चाहते थे, जिस सीमा तक पश्चिम में है, जहाँ विलास के आगे नैतिकता और सदाचरण का कोई मूल्य नहीं। वे इस स्वतंत्रता को समय तथा आचार की कड़ियों से कुछ बाधना चाहते थे।

वे सत्य और न्याय के पुजारी थे और ढोंग एवं पाखंड के पूर्ण विरोधी। अतएव आधुनिक शिक्षा, सभ्यता, सामाजिक रहन-सहन का, जिनमें भारत बलात् पश्चिम का अनुकरण कर रहा है, वे घोर विरोध करते थे। जैसे 'पशु से मनुष्य' कहानी में प्रेम-शंकर नामक पात्र के मुख से वे अपने सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते हैं—

'मैं सोशलिस्ट या डिमाक्रैट कुछ नहीं हूँ, मैं केवल न्याय, धर्म और दीन का सेवक हूँ, मुझे वर्तमान शिक्षा और सभ्यता पर विश्वास नहीं है।'

यही कारण है कि नगरों के कृत्रिम वातावरण से हट कर सीधे-

साधे, निष्कपट और सरल देहातियों की ओर जाना वे अधिक पसंद करते थे, उन्हीं के जीवन को अपनाने में परम सुख और संतोष पाते थे।

उनका समस्त जीवन संघर्षों और आपत्तियों में बीतने के कारण उन्हें यह दृढ़ विश्वास हो गया था कि संसार में सच्चे का सम्मान कहीं नहीं है। जो धर्त और ढोंगी है उन्हें ही यहाँ सफलता मिल सकती है! उन्होंने भलीभांति देख लिया था कि हमारा समाज उसे ही सभ्य मानता है, जो धूर्त और पाखंडी है। वे अपनी 'सभ्यता का रहस्य' नामक कहानी में लिखते हैं—'सभ्यता केवल हुनर के साथ ऐब करने का नाम है। अपने दोषों पर परदा डालने में यदि आप सफल हैं तो सभ्य, नहीं तो असभ्य'।

ऐसे समाज में, जहाँ कोई न्याय नहीं है, जहाँ धूर्तों को सुख तथा सच्चे और ईमानदार लोगों को विपत्ति का प्रसाद मिलता है, 'जैसा कि प्रेमचन्दजी को मिला था', रह कर उसके कर्ता पर यदि कोई मीन-मेष निकाले या उसकी स्थिति में अविश्वास रखे तो कोई आश्चर्य नहीं। इसी से ईश्वर पर उनकी तनिक भी आस्था नहीं। कई स्थल पर अपनी कहानियों में वे इस निष्कर्ष पर पहुँचते है। जैसे 'बासी भात में खुदा का साझा' नामक कहानी में दीनानाथ के मुख से वे स्वयं कहते हुए पाए जाते हैं:—'जो अपने रचे हुए खिलौनों को उनकी भूलों और बेवकूफियों की सजा अग्नि-कुंड में ढकेल कर दे, वह भगवान् दयालु नहीं हो सकता'।

यही नास्तिकता उनके सम्पूर्ण जीवन भर बनी रही, यहाँ तक कि अपने जीवन की अन्तिम घड़ियों में भी वे कहते हुए पाए गए :—'जैनेन्द्र, लोग ऐसे समय ईश्वर को याद किया करते है। ईश्वर की मुझे भी याद दिलाई जाती है पर अभी तक मुझको ईश्वर को कष्ट देने की आवश्यकता नहीं मालूम हुई है।'

उपर्युक्त शब्दों में कितनी निर्भीक आत्मा का घोष है, यह पाठक स्वयं अनुमान कर सकते है।

इतना होते हुए भी उनमें अपार सहृदयता और मानव-समाज के प्रति अविचल बंधुत्व का भाव भरा था जो उनकी साहित्यिक कृति से बरसता सा दिखाई देता है। वे भौतिकता के पुजारी न थे, पैसे के लोभ से नहीं लिखते थे, वरन् लिखते थे समाज-सेवा को ध्यान मे रख कर। इस कर्तव्य के पालन में उन्हें कष्ट के बदले अपार आनन्द मिलता था जैसा कि एक समय उन्होंने सुदर्शन से कहा था :—

'जिस रात-दिन लिखते रहने को तुम तपस्या कहते हो उसे मैं तपस्या नहीं मानता। उससे मुझे एक आन्तरिक सुख मिलता है, वह तपस्या नहीं कहा जा सकता'।

निरन्तर उपकार और उद्योग में लगे रहना ही, उनका धर्म था जो उनकी कहानियो में कई स्थलों पर वे दिखाई पड़ता है, जैसे 'लेखक' नामक कहानी में प्रवीणजी के चरित्र में स्वयं उनका चरित्र छिपा है, जहाँ वे यह कहते हुए पाए जाते है कि लेखक का काम है दीपक की तरह जलना। चाहे उसकी सेवा का कोई

पुरस्कार उसे मिले या न मिले, इसका उसको तनिक भी ध्यान न करना चाहिए।

वे ऐसी धार्मिक रूढ़ियों और समाज के मतों से घृणा करते थे जिनमें पड़ कर मनुष्य अपने मनुष्यत्व के कर्तव्य को भूल जाय, अपने भाई को भाई न समझे। एक स्थल पर वे कहते है—जो शक्ति, जो स्फूर्ति मानव-जीवन को पूरा करने में लगानी चाहिए, सहयोग मे, भाईचारे में लगानी चाहिए वह पुरानी अदालत का बदला लेने मे, बाप दादों का ऋण चुकाने मे ही भेंट हो जाती है'।

इसी सच्ची मनुष्यता को पूर्ण रूप से प्रत्येक मनुष्य प्राप्त करके एक उन्नत समाज का संघटन करे, यही उनके जीवन का मुख्य लक्ष्य था। वे चाहते थे कि पाश्चात्य देशों की तरह लोग भौतिकता के पीछे पड़ कर, अपने जीवन के आनन्द को नष्ट न करें वरन् संतोप रूपी धन को, जो सब धनों से श्रेप्ट है, ग्रहण करके समाज की सेवा करें। उन्होने एक स्थल पर यह भी कह दिया है—(सुदर्शन की बातचीत मे)।

'भाई जान—सिर्फ रुपया कमाना ही मनुष्य का काम नहीं है। मनुष्यत्व को ऊपर उठाना, मनुष्य के मन मे ऊँचे विचार उत्पन्न करना उसका उद्देश्य है और यदि यह नहीं है तो आदमी और पशु बराबर हैं। जिसके हाथ में भगवान ने कलम दी है और कलम में तासीर, उसका कर्तव्य और भी बढ़ जाता है'।

सारांश यह कि सन्तोष, न्याय तथा सेवा से जीवन को सुखी बनाते हुए प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य होना चाहिए कि वह मानव-जीवन की उन्नति में जितना भी सहयोग दे सके दे। यही प्रेमचन्द का जीवन के आदर्शों के प्रति दृष्टि थी। इसी को उन्होंने अपनी साहित्यिक कृतियों में दिखाया है। उन्होंने ईश्वर पर विश्वास न करते हुए भी मानवत्व में ईश्वरत्व को पाने का उपदेश दिया जो उनकी विशालता का सब से ज्वलंत उदाहरण है।

मनोविज्ञान

पिछले अध्यायों में चरित्र-चित्रण के वर्णन में तथा अन्य कई स्थलों पर पात्रों की अंतर्वृत्तियों पर किस प्रकार प्रेमचन्द ने प्रकाश डाला है इसका संक्षेप में वर्णन हो चुका है। यहाँ पर मनोवैज्ञानिक चित्रण की दो-एक और समस्याओं पर विचार होगा। प्रेमचन्द मनोविज्ञान के पूर्ण ज्ञाता नहीं थे, क्योंकि इन्होंने पात्रों के मानसिक चित्रण में कुछ त्रुटियाँ दिखाई है।

ऐसा कहने का यह कदापि तात्पर्य नहीं है कि उन्होने मनुष्य को समझा ही न था। मनुष्य की बाहरी वृत्तियों, भाषणों का उनका जैसा अध्ययन था, वैसा ही उनके मनोजगत् का भी। 'प्रेम-पीयूष' की भूमिका में एक स्थल पर वे लिखते है—'मनुष्य-जाति के लिए मनुष्य सब से विकट पहेली है, किसी न किसी रूप में वह अपनी ही आलोचना किया करता है, अपने ही मनोरहस्य खोला करता है। वर्तमान आख्यायिका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण को

अपना ध्येय समझती है। और सब से उत्तम वह कहानी होती है जिसका आधार किसी मनोवैज्ञानिक सत्य पर हो'।

अतः विभिन्न परस्थितियों में पड़ने से पात्र-विशेष की अंतर्वृत्तियो की क्या स्थिति होती है, इसको प्रेमचन्द भली भांति समझते थे, और कहीं कहीं बड़े सफल रूप से उन्होने इस मानसिक वृत्ति का उद्घाटन भी किया है, जैसे 'सोहाग का शव', 'बड़े भाई साहब', 'आत्मा राम' आदि कहानियों मे। पर्याप्त उदाहरणों के साथ पिछले अध्यायों में इसका उल्लेख भी हो चुका है।

यहाँ हमें कहना यह है कि मनःस्तत्व के विधान में जो एक प्रकार की त्रुटि होने का भय रहता है, वह यह है कि लेखक अपनी कृतियों के चरित्रों में अपनी मानसिक अंतर्वृत्तियों का आरोप कर देते हैं। ऐसी दशा में वह कृति व्यक्तित्व-प्रधान हो जाती है। किसी चरित्र की अन्तर्वृत्तियों का उद्घाटन करते समय अपने व्यक्तित्व को अछूता रख कर पात्रों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करना संसार के इने-गिने कलाकार ही कर सके हैं। कालिदास, शेक्सपियर, मोलियर, तुलसीदास आदि इसी प्रकार के स्रष्टा थे। शेक्सपियर ने तो अपने नाटको के पात्रों को समाज के सभी वर्गों से लेकर उनका मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है परन्तु इस कला-कुशलता से कि उन पर अपने व्यक्तित्व की आँच बहुत कम आने दी है। परिणाम यह होता है कि आकाश-गङ्गा के तारा के समान उसके चरित्रों में शेक्सपियर को ढूँढ़ना बहुत ही कठिन है। उसका

स्वभाव कैसा था, यह समालोचकों के लिए एक टेढ़ी खीर हो गई है। इसी कारण उसकी जीवनी के निर्माण में उसकी कृतियाँ बहुत कम सहायक होती है। यही दशा कालिदास की भी है। रघुवंश, कुमारसम्भव, शकुंतला और मेघदूत मे अनेक प्रकार के पात्रों का सर्जन करके जगत् की और प्रकृति की माधुरी का उन्होंने रहस्योद्घाटन किया है, परन्तु उनमें कालिदास कहाँ है, इसका पता लगाना बहुत कठिन है। यही कला की सबसे ऊँची भूमि है।

प्रेमचन्द इतने ऊँचे कोटि के कलाकार नहीं हैं यह तो कहना ही पड़ेगा। कारण यह है कि अपने पात्रों की मानसिक वृत्तियों का विश्लेषण करते समय, वे उनके मुख से अपनी ही मनोवृत्ति और अपने विचारों का प्रायः प्रकाशन करने लगते हैं। अतः उनकी कहानियों में अनेक पात्र काठ के उस पुतले के तुल्य हैं, जिसे लेखक अपनी उँगलियों के सूत्र से नचाता है। उनमें कोई निजी मौलिकता नहीं है।

मोपाँसा, ज़ोला, गोर्की, और वेलज़ाक की कहानियाँ पढ़िए। उनमे चरित्रों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण इस रीति से हुआ है कि उस सागर में लेखक के व्यक्तित्व का पता ही नहीं चलता। मनुष्य-जीवन कितना रहस्यमय है, कितना जटिल और द्वन्द्वमय है, इसका उद्घाटन जितना इन लेखकों की लेखनी ने किया उतना प्रेमचन्द ने नहीं। प्रेमचन्द के सैकड़ों पात्रों में प्रायः हम उन्हीं की झलक व्याप्त पाते हैं। 'पशु से मनुष्य नामक' कहानी में प्रेमशंकर के मुख से लम्बा साम्यवाद पर भाषण प्रेम-

चन्द के सिद्धान्त का द्योतक है। 'लेखक' नामक कहानी में प्रवीण जी की कठिनाइयों, उनकी अपनी मानसिक वृत्तियों का चित्रण है। चोरी, कजाकी, रामलीला, प्रेरणा और शान्ति आदि कहानियो में हम प्रेमचन्द की सच्ची तस्वीर खिंची हुई पाते है। वहाँ प्रेमचन्द अपने को बचा नहीं सके है। उनकी कला मनोवैज्ञानिक चित्रण के लिहाज से उच्च कोटि की नहीं कही जा सकती। हाँ कहीं कुछ कहानियों में इसका अपवाद भी मिलता है, जहाँ प्रेमचन्द ने अपने चरित्रों की मनोवृत्तियों का स्वाभाविक और यथार्थ चित्रण किया है।

ऐतिहासिक चित्रण

ऐतिहासिक कहानियाँ प्रेमचन्द ने बहुत थोड़ी लिखी हैं, इसका कारण यह है कि भूत की अपेक्षा वर्तमान को वे अधिक पसन्द करते थे और उसके वर्णन करने मे उनका मन अधिक रमता था। भूत की ओर जाना उनकी समझ में गड़े मुर्दे उखाड़ना था जिसमे सब लोग कुशल नहीं होते। प्रसाद जी ऐतिहासिक चित्रण अधिक सफलता से कर सकते थे क्योकि उनका ऐतिहासिक अध्ययन गम्भीर था। प्राचीनता को छोड़ कर जहाँ आधुनिकता का चित्रण 'प्रसाद' ने अपनी कहानियो या उपन्यासों में करना प्रारंभ किया वहाँ वे असफल रहे। यद्यपि प्रेमचन्द का ऐतिहासिक अध्ययन प्रसाद की तरह गम्भीर नहीं था, तथापि जो कुछ इनी-गिनी कहानियाँ प्रेमचन्द ने लिखी हैं, वे सफल है। नवनिधि सग्रह की

'राजा हादौल', 'रानी सारंधा', 'मर्यादा की बेदी', 'पाप का अग्नि-कुंड', 'जुगनू की चमक', 'धोखा' और 'सती', कहानियाँ मुगल शासन के समय में बची-खुची राजपूत जाति की स्त्रियों और पुरुषों की वीरता तथा वचन-पालन की सत्यता की द्योतक हैं। ऐतिहासिक कहानियों का दूसरा वर्ग है, मुसलिम-शासन के विभिन्न कालों का चित्रण, जो 'वज्रपात', 'लैला', 'दिलरानी', 'परीक्षा' और 'क्षमा' नाम की कहानियों में पाया जाता है। सब से पहले राजपूत काल की कहानियों को देखना चाहिए।

राजपूत-काल की कहानियाँ भी अतिप्राचीन काल से न लेकर प्रेमचद ने सन्निकट मुगल-शासन के लगभग की ली हैं, जिसका प्रेमचन्द को ज्ञान था। घटना तथा चरित्र दोनों का सामंजस्य करने के कारण ये कहानियाँ खिचड़ी सी हो गई है। इसके साथ ही साथ ये कहानियाँ न तो पूरी ऐतिहासिक कही जा सकती हैं, न काल्पनिक, वरन् इन दोनों के मेल सी हैं। इसके अतिरिक्त कुछ कहानियाँ केवल चरित्रप्रधान है:—जैसे 'राजा हादौल', 'रानी सारंधा' आदि और शेष घटना और चरित्र दोनों के मेल से चित्रित हैं।

'राजा हरदोल' और 'रानी सारन्धा' केवल दो ही कहानियों के पढ़ने से यह स्पष्ट विदित हो जाता है, कि किस प्रकार मुगल साम्राज्य के अन्तिम दिनों में भी, जब कि युगों के घोर वैमनस्य के कारण राजपूत जाति की शक्ति तितर-बितर और क्षीण हो गई थी, उनमें पराक्रम तथा कर्तव्य-परायणता का वही पुराना आदर्श

शेष था जो उनकी प्राचीन समृद्धि और महत्ता के परिचय के लिए पर्याप्त था। राजा हरदौल, जो बुन्देलों की वीरता का दिवाकर था सहर्ष अपने भाई के हाथ से विषका बीड़ा लेकर खा जाता है और निरपराध होते हुए भी बड़े भाई के विरुद्ध चूं नहीं कर सकता। भारतीय इतिहास में इस प्रकार का आज्ञापालन अनेक कथाओं मे प्रसिद्ध हैं। 'रानी सारन्धा' तो भारतीय नारी-समाज की वीरता और वचन-परायणता का ज्वलंत उदाहरण है। केवल अपनी मर्यादा की रक्षा के लिए उसने अपने समस्त सुखों को तिलांजलि दे दी, और अपने पति के समस्त जीवन को संकटमय बनाए रखा। अन्तिम समय में भी जब उसने देखा कि शत्रुओं से घिरे हुए उसके रोग-ग्रस्त पति की पवित्र देह मुसलमान सैनिक छूना चाहते हैं, तो स्वयं उनकी आज्ञा से उनके वक्षःस्थल में कटार चुभोकर उनकी सच्ची सहधर्मिणी होने का प्रमाण देती है। इसी प्रकार का आदर्श 'सती' नामक कहानी में भी दिखाया गया है, जिसमें बुंदेला क्षत्राणी चिन्ता अपने पति की मृत्यु सुनकर सती हो जाती है। भारत का इतिहास राजपूत नर-नारियों के ऐसे कितने आदर्श और अमर कृतियो से भरा पड़ा है! प्रेमचन्द ने उसी को अपनी कहानियों का विषय बनाकर अपनी लेखनी को अमर बनाया है। 'मर्यादा की वेदी', 'पाप का अग्निकुंड' तथा 'जुगनू की चमक' नामक कहानियों में भी इसी प्रकार की घटनाओं का चित्रण है।

अब लो हाथ इन (पहले वर्ग की) कहानियों के रचना-क्रम

तथा कला पर भी दृष्टिपात कर लेना चाहिए। ऐतिहासिक कहानी में इतिहास को अपनी कहानी का विषय बनाने ने कारण, कहानी-कार की स्वछंदता जाती रहती है। उसे कुछ बँधी हुई घटनाओं तथा भावनाओं के भीतर ही अपनी कला सीमित रखनी पड़ती है। अतएव उसके सन्मुख दो उद्देश्य रहते हैं। एक तो अतीत की घटनाओं का सफल चित्रण, दूसरे कला का सामंजस्य बैठाना। इन दोनों का समावेश बहुत सफल कहानी-कार ही कर सकता है। अंग्रेजी साहित्य में वाल्टर स्काट ने इतिहास और कल्पना दोनों का बड़ा ही कला-पूर्ण सामंजस्य अपने उपन्यासों में स्थापित किया है। बंगला साहित्य में भी रविबाबू ने अपने 'गोरा' तथा शरत्-चंद ने अपनी 'दिनेश-नन्दिनी' में इन दोनों का कलापूर्ण सामंजस्य किया है। प्रेमचन्द की ऐतिहासिक कहानियों में 'रानी सारन्धा', 'धोखा' आदि पहले वर्ग में से और 'शतरंज के खिलाड़ी' तथा 'वज्रपात' दूसरे वर्ग में से—इन दोनों उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए अधिक सफल हुई हैं। इन्हीं कहानियों में एक सत्यता तथा संवेदनात्मक अन्विति का सफल उदाहरण मिलता है। इनमें भी पहले वर्ग की कहानियों में 'धोखा', कहानी कला की दृष्टि से सब से अच्छी बन पड़ी है। कहानी की गति में तनिक भी शैथिल्य नहीं है, इसके अतिरिक्त कुतूहल और आश्चर्य का बड़ा ही कलात्मक परिपाक हुआ है। बघौली के राव देवीचन्द की एक मात्र लाड़िली कन्या एक दिन कमल-कुंड पर बैठी हुई, एक नवयुवक योगी की संगीत-माधुरी पर मुग्ध होकर

अपना मन खो बैठती है और रात दिन उसी पुरुष की आकृति ध्यान में लाया करती है। इसी बीच में नवगढ़ के राजकुमार हरिश्चन्द्र से जो म्योर कालेज में शिक्षित थे, और नवीन विचारों के समर्थक थे, उसका विवाह हो जाता है। वह पति के घर जा कर पूर्ण गृहस्थ-जीवनका आनन्द उठाने लगती है। वह जीवन की सभी चिन्ताओं से मुक्त थी, परन्तु उसके हृदय के कोने से कभी कभी वही एक टीस निकल कर उसे व्याकुल कर देती थी, और फिर उसी योगी की याद मे बेसुध हो जाती थी। अंत मे एक दिन यह देख कर कि वह योगी उसका पति ही है, जो योगी का वेप धारण करके उसे देखने गया था, उसके आश्चर्य की सीमा नहीं रहती, और अब वह सब प्रकार से अपने को पति-प्रेम में अर्पित कर देती है।

आरम्भिक ऐतिहासिक कहानियों मे यही एक कहानीकला की दृष्टि से बहुत सुंदर हुई है। 'रानी सारंधा' कहानी भी सफल बन पड़ी है। परंतु उसमें घटनाओ के विस्तार के कारण शैथिल्य सा आ गया है। राजा हरदौल को तो वीर सिद्ध करने के लिए एक बड़े विस्तृत घटना-चक्र का निर्माण करना पड़ता है। 'पाप का अग्निकुंड' तथा 'मर्यादा की वेदी' शीर्षक कहानियों में तो लेखक अपने पथ को ही भूला सा दिखाई देता है।

इसके अतिरिक्त भापा तथा शैली की दृष्टि से भी ये कहानियाँ उतनी परिपक्व नहीं हैं। क्योंकि ये कहानियाँ प्रेमचंद द्वारा बहुत पहले लिखी गई थीं।

अब ऐतिहासिक कहानियों के उस वर्ग पर विचार करना है, जिसमें मुसलिम-संस्कृति तथा सभ्यता का चित्रण है। ये कहानियाँ पहले वर्ग की कहानियों के पश्चात् लिखी गईं, अतएव इनमें पहले वर्ग की कहानियों की अपेक्षा परिस्थितियों का चित्रण अधिक सुंदर, रचना-सौष्ठव विशेष परिपक्व, और कहानी-कला कुछ अधिक निखरती दिखाई देती है। पहले इनके ऐतिहासिक चित्रण को देखना चाहिए।

उर्दू-साहित्य से अधिक लगाव रहने के कारण, तथा गाँधीजी के हिन्दू-मुसलिम ऐक्य के संदेश से प्रभावित होने के कारण, प्रेम-चन्द मुसलिम संस्कृति को भी आदर की दृष्टि से देखते थे। मुस-लिम शासन के विभिन्न कालों का बड़ा ही आकर्षक चित्र प्रेमचन्द उन कहानियों में खीचते हैं। 'क्षमा' नामक कहानी में जमाल नामक मुसलिम सरदार को मारने वाले यहूदी दाउद को जमाल का पिता ही समस्त जाति से बैर लेकर अपने यहाँ शरण देता है, क्योंकि वह अकस्मात् उसी के घर में रक्षार्थ आ पड़ता है। इस कहानी में लेखक ने प्राचीन अरबों के उस आदर्श-व्यवहार की झाँकी दिखाई है जब कि वे क़ुरान के आज्ञानुसार शरणागत शत्रु पर हाथ नहीं उठाते थे। 'कथावस्तु' के अनुसार यह कहानी पहले वर्ग की 'जुगनू की चमक' नामक कहानी से मिलती है। 'वज्रपात' और 'परीक्षा' में नादिरशाह के भारत पर आक्रमण, तथा उसके आतंक के प्रभाव की परिस्थितियों का बड़ा ही यथातथ्य चित्रण मिलता है। 'परीक्षा' शीर्षक कहानी में मुसलिम बादशाहों की

रानियों के चारित्रिक अधःपतन का बड़ा ही सुंदर दृश्य मिलता है। 'सतरञ्ज के खिलाड़ी' नामक कहानी में तो अवध के नवाबी शासन के चरम पतन का दृश्य इतना स्पष्ट पाठक के सम्मुख खिंच जाता है, जितना तत्कालीन इतिहास के कई ग्रन्थों से भी स्पष्ट न हो सके। इसी प्रकार 'लैला', 'दिल की रानी' आदि कहानिओं में भी तत्कालीन परिस्थितियों का बड़ा ही सजीव चित्र मिलता है।

अब इस द्वितीय वर्ग की कहानियों की कला तथा रचना सौष्ठव पर भी दृष्टिपात करना चाहिए। जैसा कि पहले संकेत किया जा चुका है, पहले वर्ग की कहानियों के बहुत पश्चात् ये कहानियाँ लिखी गईं, जब कि प्रेमचन्द की कहानी-कला बहुत ही परिमार्जित तथा परिपक्व हो गई थी। अतः उनकी विकसित कहानी-लेखन-कला का दर्शन हमें इन कहानियो में मिलता है। परन्तु सभी कहानियों में यह बात नहीं मिलती। कुछ कहानियाँ तो पहले वर्ग की असफल कहानियों की तरह घटनाचक्रों की लड़ी सजाने के कारण बहुत ही शिथिल हो गई हैं—जैसे 'लैला', 'क्षमा' और वज्रपात आदि कहानियाँ। 'दिल की रानी' शीर्षक कहानी भी बहुत लम्बी हो गई है, परन्तु उसमें प्रभाव की अन्विति का अपहरण नहीं होने पाया है। पहले वर्ग की 'धोखा' नामक कहानी की तरह इसमें भी कौतूहल का समावेश हुआ है। तैमूर को हबीबा नाम की एक युवती बहुत ही प्रभावित करती है, परन्तु पुरुष वेष में आ कर युद्धस्थल में। तैमूर उसे एक नौजवान वीर और बुद्धिमान दोनो सम झकर

उसकी नसीहत से प्रभावित होता है। उसके जीवन में अशोक के जीवन की तरह अकस्मात् महान् परिवर्तन हो जाता है। वह धर्म के नाम पर करता हुआ भीषण हिंसा का त्याग करके हबीबा पर ही समस्त राज्य का भार छोड़ देता है। हबीबा रात-दिन डरती है कि कहीं तैमूर को पता न चल जाय कि वह स्त्री है। एक दिन उसे यह जान कर महान् विस्मय हुआ कि तैमूर यह पहले से ही जान गया है। दोनों मिलने पर प्रेम के सूत्र में सदा के लिए बँध जाते है।

परन्तु कहानी-कला का चरम उत्कर्ष 'सतरञ्ज के खिलाड़ी' नामक कहानी में मिलता है जो प्रेमचन्द की सर्वश्रेष्ठ कहानियों में से एक है। अन्य ऐतिहासिक कहानियों की तरह इसमें घटनाओं की व्यर्थ लड़ी जोड़कर कहानी के प्रवाह में शैथिल्य का समावेश नहीं किया गया है। परंतु तत्कालीन विलासिता के एक ही उपादान से (सतरंज के खेल से) उस समय के शासन के पतन का बड़ा ही सजीव चित्रण किया गया है। इसके साथ ही साथ अवध की बेगमों के स्वभाव, उनकी मनोवृत्तियों के चित्रण, मिर्जा और नवाब के व्यंगात्मक तथा कटु उक्तियों से पूर्ण विवाद का जो सरस चित्र प्रेमचंद ने इस छोटी सी कहानी में खींचा है, वह उनकी बहुत कम कहानियों मे मिला है। कहानी का एक-एक वाक्य प्रेमचन्द की सूक्ष्म परख, सामाजिक अध्ययन तथा पात्रों अंतर्वृत्तियों के यथातथ्य उद्घाटन के परिचायक है। परन्तु सबसे मनोहर बात उस कहानी में जो मिलती है, वह है भाषा और

भावों की झलकती हुई फुलझड़ी। मुहाविरों और व्यंग्योक्तियों का इतना सुन्दर प्रयोग बहुत कम कहानियों के कथोपकथन मे पाया जाता है। इस वर्ग की और कहानियों की भाषा उर्दू-मिश्रित और धारावाहिक है, परन्तु उनमें शैली इतनी परिपक्व नहीं हो पाई है, जितनी इस कहानी में। उदाहरण के लिए मिर्जासाहब और नवाबसाहब तथा उनकी बेगम का वार्तालाप देखिए, जो पूर्णतः यथार्थ और स्वाभाविक है।

सारांश यह है कि प्रेमचन्द यद्यपि अपनी सम्पूर्ण ऐतिहासिक कहानियों में कला का उत्कृष्ट समावेश न कर सके तथापि वे चरित्र-चित्रण, कथोपकथन तथा ऐतिहासिक परिस्थितियों के वर्णन में बहुत सफल हुए हैं।

सातवाँ अध्याय

प्रेमचन्द की कहानियों में भारतीय ग्राम-समस्या

प्रेमचंद की समस्त साहित्यिक कृतियों पर दृष्टिपात करने से पता चलता है कि वे समाज-सुधारक पहले और कलाकार बाद मे है। वे अपनी कहानियों और उपन्यासो द्वारा समाज के व्यापक अंग का चित्रण करके उसे एक आदर्श रूप में परिणत करना चाहते थे। किसी साहित्यकार का इससे ऊंचा और कौन उद्देश्य हो सकता है। 'कला के लिए कला' को मानकर वे पाश्चात्य साहित्यिकों की तरह समाज को नैतिक आदर्शों से गिराना नहीं चाहते थे। अतएव उन्होने अपनी साहित्यिक कृति को जीवन और समाज से संबद्ध किया। भारतीय समाजोद्यान आधुनिक युग के सघर्ष और उथल-पुथल के कारण किन किन क्यारियों में बॅट गया है, उसके पुष्पों में कौन कौन बीमारियाँ प्रविष्ट हो गई हैं, उनमें कौन-कौन से कीटाणु घुस गये है, इसका बहुत ही स्पष्ट चित्र उन्होने पाठकों के सम्मुख रखा। परन्तु समाज के रोगो का यथातथ्य चित्रण करके ही वे सन्तुष्ट न हुए, उन्होंने उन उपचारों को भी बताया, जिनसे समाज विकारमुक्त होकर स्वास्थ्य-लाभ कर सकता है।

अपने पूर्वजो के गौरव की प्रशंसा को सुनकर कौन आह्लादित नहीं होता। आज का भारतीय समाज चाहे अपने पूर्वजो की

प्रशंसा भले ही कर ले, और उनके गुणगान सुनकर आह्लादित भले ही होले पर आज का भारत अपने प्राचीन आदर्शों से एकदम च्युत हो गया है। शताब्दियों की दासता ने हिन्दू जाति की नींव को खोखला बना दिया है। हमारा प्राचीन गौरव अतीत मे चाहे जो रहा हो, पर आज वह हमारे लिए एक भूला हुआ स्वप्नमात्र रह गया है। और हिन्दू ही क्यों, आज का भारत तो हिन्दू, मुसलमान, ईसाई और पारसी आदि अनेक जातियो के मेल से बना हुआ देश है और उन सबकी समस्याएँ राष्ट्र की समस्याएँ है। प्रेमचन्द ने इन अनेक जातियों से मिश्रित भारतीय समाज का अपनी कहानियों मे चित्रण किया और उसके उत्थान के उपाय बतलाए।

परन्तु जैसा पहले कहा जा चुका है, समाज की विभिन्न श्रेणियो में निम्न श्रेणी का ही उन्होने अपनी कहानियों में अधिक चित्रण किया, और उसी के उत्थान में भारत का कल्याण समझा। निम्न श्रेणी मे भी ग्रामीण जीवन का ही अधिक और सफल चित्रण हुआ है।

ग्रामीण जीवन की परिस्थितियाँ और उनका चित्रण

बहुत से पाठकों को यह देखकर आश्चर्य होता है कि प्रेमचन्द ने अपनी आयु का अधिकांश भाग नगरों में व्यतीत करते हुए भी किस प्रकार भारतीय गाँवों का इतना सजीव और यथार्थ चित्र खींचा। परन्तु यह जानने पर कि प्रेमचन्द का जन्म और लालन-पालन एक गॉव ही में हुआ था, और बाल्यगत संस्कार तथा प्रभाव जीवन में स्थिर और अमिट रहते हैं, हमें उनके चित्रण पर तनिक

भी आश्चर्य नहीं होता। जिसने अपनी आयु के आरम्भिक दस-पाँच वर्ष गाँव में बिताए हों, वह आजीवन ग्रामीण वातावरण से दूर रहते हुए भी गाँव को भूल नहीं सकता, प्रत्युत उसके हृदय-पटल पर गाँव की सभी स्मृतियाँ उसी प्रकार अमिट रहेंगी। यही बात प्रेमचन्द के विषय में भी है। परन्तु इसके साथ ही साथ उन्होंने यह देखा कि अधिकांश भारत गाँवों में ही बसा है, अतएव किसी लेखक को, जो भारतीय समाज का चित्रण करना चाहता हो, सबसे पहले भारतीय गाँवों की समस्याओं को लेना होगा। जैसा कि वे एक स्थल पर लिखते हैं:—

जिस देश के ८० प्रतिशत मनुष्य गाँवों में रहते हों, उसके साहित्य मे ग्राम्य-जीवन का प्रधान रूप से चित्रण होना स्वाभाविक ही है। उन्हीं का सुख, राष्ट्र का सुख और उन्हीं की समस्याएँ राष्ट्र की समस्याएँ है।'

भारतीय गाँवों को राष्ट्र का प्रतीक समझते हुए भी प्रेमचन्द ने एक और कारण से ग्रामीण समस्याओं पर अधिक ध्यान दिया। वह था गाँवों मे अकृत्रिम जीवन का स्वरूप। नगरो का जीवन कृत्रिम होता है, वहाँ के लोग अस्वाभाविक आतिथ्य-सत्कार, रूखे प्रेम और बनावटी व्यवहार के ही उपासक होते हैं, क्योंकि नगरों का जीवन अस्थिर है। गाँवो मे यह बात नहीं होती। गाँवों में बनावट का नाम नहीं दिखाई पड़ता है। वहाँ प्रेम और द्वेष, सरलता और कर्कशता, सुख और दुःख दोनों का एक स्वाभाविक चित्र देखने को मिलता है। 'प्रेम-पीयूष' की भूमिका में प्रेमचन्द ने इसका उल्लेख भी किया है।

'ग्राम्य-जीवन में जीवन का अपेक्षाकृत मुक्त प्रवाह दिखाई पड़ता है, अपने प्रेम, त्याग और कलह के मौलिक रूप में।" —

अतः प्रेम, त्याग और कलह के मौलिक रूप का दर्शन नागरिक जीवन में नहीं वरन्, ग्राम्य-जीवन में ही मिलेगा। इसीलिए ग्रामीण चित्रण में ही—प्रेमचन्द की तबियत अधिक लगी और जिस तन्मयता और मार्मिकता से उन्होने ग्रामीण जीवन का वर्णन किया, उतनी तन्मयता से समाज के अन्य श्रेणियों चित्रण में उनका मन नहीं रमा।

भारतीय गाँवों को देखने से सबसे पहली बात जो किसी दर्शक के हृदय-पटल पर अंकित होती है, वह है देहातियो की ग़रीबी और उनकी संकटापन्न दशा। एक दो नहीं, गाँवो के ७५ प्रतिशत मज़दूरो को दो-दो दिन तक मजदूरी करने के पश्चात् कहीं पका अन्न भोजन करने को मिलता है और वह भी रूखा-सूखा और आधा पेट। यदि अन्न भी मिला तो ओढ़ने और पहिनने के वस्त्र अपर्याप्त ही रहते हैं। प्रेमचन्द की अनेक कहानियो में इस घोर दारिद्र्य का मार्मिक चित्रण मिलता है। 'कफ़न', 'अलग्योझा', 'सद्‌गति', 'घर जमाई', 'सवासेर गेहूँ', 'ईदगाह', 'घासवाली', आदि कहानियाँ उदाहरण के रूप में दी जा सकती हैं। 'ईदगाह', से :—

'अभागिन अमीना अपनी कोठरी में बैठी रो रही है, आज ईद का दिन और उसके घर मे दाना नहीं, किसने बुलाया था इस निगोड़ी ईद को'। इसमें उस विपन्नावस्था का वर्णन है

जब त्योहारों के आने पर प्रसन्नता के बदले घोर दुःख होता है, और वह इसलिए कि पास में भोजन तक को कुछ नहीं। (अवश्य प्रेमचन्द ने इस दृश्य को कहीं देखा होगा)। दूसरा चित्र 'कफ़न' नामक कहानी से लीजिए :—

चमारों का कुनबा था और सारे गाँव में बदनाम, जब दो चार फ़ाके हो जाते तो घीसू पेड़ पर चढ़कर लकड़ियाँ तोड़ लाता और माधव बाज़ार से बेच लाता। विचित्र जीवन था इनका ? घर में मिट्टी के दो-चार बर्तनों के सिवाय कोई सम्पत्ति नहीं। फटे चिथड़ों से अपनी नग्नता ढाँके हुए जिए जाते थे। संसार की चिन्ताओं से मुक्त। कर्ज़ से लदे हुए। गालियाँ भी खाते, मगर कोई ग़म नहीं। दीन इतने कि वसूली की बिलकुल आशा न रहने पर भी लोग इन्हें कुछ न कुछ कर्ज़ दे देते थे। मटर, आलू की फसल में दूसरों के खेतों से मटर या आलू उखाड़ लाते और रात को चूसते। घीसू ने इसी आकाश-वृत्ति से साठ साल की उम्र काट दी, और माधव भी सपूत बेटे की तरह बाप के ही पद चिन्हों-पर चल रहा था'।

परन्तु सबसे आश्चर्य की बात है कि इन गाँव वालो का इस विपन्नावस्था में भी एक प्रकार के संतोष और सुख का भाव बनाए रखना। उनकी सबसे बड़ी अभिलाषा यही होती है, कि पेट भर रूखा-सूखा भोजन खाने को तथा मोटा-फटा वस्त्र भी पहनने को मिल जाया करे। बस उनकी अभिलाषाओं की यही अन्तिम सीमा है। इस पर भी हमारे आश्चर्य का ठिकाना

नहीं रहता, जब हम इन देहातियों को परोपकार की भावना में निमज्जित, तथा अतिथि-सत्कार के लिए स्वयं भूखा रहने तक में तत्पर पाते है। दुनिया का नियम है कि वह अपने खाने-पीने की व्यवस्था करके दूसरे को खिलाने का प्रबन्ध करती है, परन्तु ये देहाती तो स्वयं भूखे रह कर, अपने शरीर का रुधिर सुखा करके दूसरे को खिलाते है। धन्य है भारत! और उससे भी धन्य भारत के कृषक। 'बाबा जी का भोग', 'सवा सेर गेहूँ', आदि कहानियों मे इसी आदर्श अतिथि-सत्कार का चित्रण मिलता है। 'बाबा जी के भोग' नामक कहानी में अहीर रामधन सपरिवार भूखा रहकर भी द्वार पर आए हुए साधु को इच्छापूर्ण भोजन कराता है। 'सुजान भगत' में भगत इसी अतिथि-सत्कार में कमी आने से एक बार परिवार से रुष्ट होकर पुनः खेती के कार्य में डट जाता है, और भिक्षुक को उसकी इच्छा से भी अधिक अन्न देता है। यहाँ तक कि अन्न की गठरी, जब भिक्षुक से नहीं उठती, तो स्वय उठाकर उसके घर पहुँचा आता है। धन्य है प्रेमचन्द की लेखनी जिसने गाँव की इन वास्तविक परिस्थितियों का इतना सुन्दर चित्र खींचा।

ग्राम-वासियों में दूसरी विशेषताएँ जो पाई जाती है, वे हैं धर्मान्धता, बड़ों की आज्ञा का पालन, तथा अपनी पुरानी और बाप-दादों के समय की परिपाटी और मर्यादा को बनाए रखने का एक हठ। अस्पृश्यो और अछूतों की दुर्दशा का तो वर्णन

हो न लीजिए। रात-दिन बेगार करते रहने पर भी, भूखों रहने पर भी उन्हें धर्म का डर लगा रहता है। और वे धार्मिक कृत्यों के करने से तनिक भी विचलित नहीं होते। उदाहरण के लिए 'सद्गति' नामक कहानी मे दिखाया गया है कि दुःखी चमार कई दिन के उपवास से अपनी मजदूरी के पैसे और अन्न संचित करता है। किसलिए? सत्यनारायण की कथा सुनने के लिए। बड़ी तैयारी के पश्चात् पं० जी के यहाँ उनको बुलाने जाता है। उसे देखते ही पं० जी को अपने हफ्तों की मजदूरी के पैसे बचाने की याद आ जाती है। वे उसके जिम्मे भूसा ढोने और लकड़ी चीरने का काम कर देते है। और तुर्रा यह कि बेगार, उसे खाने तक को नही देते। काम लेने पर पशु के भी पेट की चिन्ता की जाती है। ये बेचारे पशुओं से भी गए बीते है। कई दिनों के उपवास के कारण दुःखी को फिर जब कड़ा काम करना पड़ता है, तो वह वही मर जाता है। 'मन्दिर' नामक कहानी में सुखिया का एकमात्र पुत्र इसलिए मर जाता है, कि मन्दिर में ठाकुर का दर्शन करने वह सपुत्र जाती है, और पुजारी उसका यह कर्म अनुचित समझकर उसे इतने जोर से धक्का देते हैं कि उसका पुत्र गोद से गिरकर मर जाता है। एक दो नहीं, इस धर्म-भीरुता के कारण हज़ारो देहाती प्रति वर्ष काल-कवलित हो जाते हैं। माघ या कार्तिक के पर्वों में सैकड़ों कोस से रुपया उधार लेकर ये ग्रामीण पैदल गंगा स्नान को प्रयाग या काशी आते है और अनेक संकटों के शिकार बनते हैं।

इतना ही नहीं, अपनी सरलता के कारण सभी लोग इन देहातियों को चूसने का ही प्रयत्न करते है। साल भर के भगीरथ प्रयत्न के पश्चात् पाला, ओला और अनेक आपदाओं से बचने पर ज्यों ही उनके खलिहान में अन्न आता है, थाने के पुलिस, जमींदार, मुखिया, पटवारी इन भोले-भाले प्राणियों को व्यर्थ के मामले मे फॅसाकर इनकी वर्ष भर की कमाई हड़प करने को उद्यत हो जाते है। 'उपदेश' नामक कहानी में इसी का चित्रण प्रेमचन्द ने किया है।

परन्तु यह दरिद्रता, सरलता और धर्म-भीरुता तो देहातियों के स्वभाव का एक अंग है। उनके स्वभाव की अन्य विशेषताओं पर ध्यान देना चाहिए। दरिद्रता के कारण इन देहातियो में से अधिकांश आजन्म अशिक्षित और मूर्ख बने ही रह जाते हैं, तथा रह जाते है देश और समाज के वातावरण से सर्वथा अपरिचित। इसके साथ ही साथ उन में घोर आलस्य, अकर्मण्यता, और वैमनस्य का रोग भी घुसा रहता है। परिणाम यह होता है कि लड़ने, झगड़ने, मुकदमेबाजी और फौजदारी में ही इनका सारा धन और जीवन स्वाहा हो जाता है। एक कुटुम्ब के प्राणियों में शायद ही कभी मेल रहता हो। परिणामतः आएदिन परिवार मे अलग्योझे हुआ करते हैं, चाहे वहाँ भोजन का भी ठिकाना न हो। परन्तु इस वैमनस्य के होते हुए भी एक भाई दूसरे भाई की संकट में सहायता करता है, उसका अहित नहीं सोचता। देहातियो का वैमनस्य जाड़े की बदली के समान है, जो घण्टे घण्टे, मिनट-मिनट पर हटती और

आती रहती है। 'अलग्योझा' नामक कहानी में प्रेमचन्द ने इसी का वर्णन किया है। 'मुक्ति-मार्ग' दूसरी कहानी है, जिसमें प्रेमचन्द ने इस विचित्र कलह का वर्णन किया है। 'झींगुर, बुद्धू गड़ेरिये की भेड़ों को पीटता है, इस पर बुद्धू झींगुर के समस्त गन्ने के खेत में आग लगा देता है। दोनों साल भर भूखों मरते हैं, और एक ही स्थान पर मजदूरी करने जाते हैं और अन्त में दोनों में वहीं मेल हो जाता है। 'विध्वंस' नामक कहानी में एक भड़भूज बुढ़िया का चित्रण है, जो जरा सा गाली पाने पर आग लगा कर समस्त पड़ोस को भस्मीभूत कर देती है। 'घर-जमाई' नामक कहानी में इसी प्रकार का चित्रण है।

देहातियों के स्वभाव का एक दूसरा दृश्य है भाग्य के भरोसे हाथ पर हाथ धरे बैठे रहना, किसी विपत्ति के आ पड़ने पर पूर्व जन्म के कर्मों को उत्तरदायी ठहराना तथा जीवन के संघर्षों से तटस्थता का भाव बनाए रखना। प्रेमचन्द ने बड़ी ही बारीकी से इनका अपनी कई कहानियों में वर्णन करके अपनी सूक्ष्म परख और अध्ययन-शक्ति का परिचय दिया है। 'कफ़न' के पात्र दरिद्र होते हुए भी कई दिन के उपवास के पश्चात् भी मज़दूरी नहीं करते, यद्यपि उन्हें मज़दूरी मिलती है। यहाँ तक कि वे इतने निर्लज्ज है कि अपनी मृत स्त्री के कफन के लिए पाए हुए चन्दे के पैसों को भी खा-पीकर उड़ा देते है। बहुत से ग्रामीण तो इस दरिद्रता पर भी गाँजे, चरस आदि के व्यसनों मे पड़ जाते है। 'अग्नि-समाधि' का पयाग इसी प्रकार का मनुष्य है। मज़दूरी के पैसों को गाँजा

पीकर फूंक देता है। जैसा कि 'सुजान भगत' में बुलाकी एक स्थल पर सुजान से कहती है 'अब क्यों इस माया में पड़े हो, आधी रोटी खाओ, भगवान का भजन करो और पड़े रहो।, देहात के अधिकांश लोगों की अभिलाषाओं का यही अन्त हो जाता है।

यदि इन अवगुणो पर दृष्टिपात किया जाय, तो हमे उसका मूल कारण दारिद्र्य ही मिलेगा। दरिद्रता के कारण ग्राम-वासियो का समस्त जीवन निरुद्देश्य हो जाता है। रात-दिन के परिश्रम से यदि घर मे कुछ आया भी तो स्त्री के आभूषण बनवाने तथा व्यर्थ की मर्यादा निभाने में उड़ जाता है। आभूषणों के लिए घरो में, स्त्री और पति के बीच घोर सग्राम छिड़ा रहता। 'अग्नि-समाधि' कहानी का एक अंश देखिए :—

'पयाग ने त्योरी चढ़ाकर कहा—भला चाहती है तो पैसे दे दे। नही इस तरह तग करेगी, तो एक दिन कहीं निकल जाऊँगा, तब रोएगी'।

रुक्मिन अँगूठा दिखलाकर बोली—रोए मेरी बला। तुम रहते ही हो तो कौन सोने का कौर खिला देते हो। अब भी छाती फाड़ती हूँ, तब भी छाती फाड़ूँगी।'

'तो अब यही फैसला है?'

'हाँ हाँ, कह तो दिया, मेरे पास पैसे नहीं हैं।'

'गहने बनवाने के लिए पैसे हैं, और मै चार पैसे माँगता हूँ तो यों जवाब देती है।'

रुक्मिन तिनक कर बोली 'गहने बनवाती हूँ, तो तुम्हारी छाती क्यों फटती है। तुमने तो पीतल का छल्ला भी नहीं बनवाया, क्या इतना भी नहीं देखा जाता !'

इन अवगुणों के होते हुए भी प्रेमचन्द इन्ही झगड़ालू, अशिक्षित और दीन देहातियों को छाती से लगाने के लिए दौड़ते हैं। अपने चित्रण से वे पाठकों के सम्मुख यह रखना चाहते हैं कि देहातियों के समस्त अवगुण दरिद्रता के कारण हैं, जिनमें उनका कोई दोष नहीं है, और इसके लिए वे सर्वथा क्षम्य हैं। इन दोषों के होते हुए भी, हृदय-हीन और शुष्क होकर भी तथा बाप बेटों में वैमनस्य रहते हुए भी, तनिक सा संकट आने पर वे एक दूसरे के लिए जान दे देते है। वे उन नागरिकों से अच्छे है, जो बात की बात पर पैसे खर्च करवाते और कोरी सहानुभूति रखते है। 'अग्नि समाधि' में पयाग की मड़ैया में जब आग लग जाती है, और जब वह देखता है कि केवल उसके कारण सारा ग्राम भस्म हो जाएगा, तब गाँव के उपकार के लिए जलती मड़ैया को सिर पर रख कर फेंकता है और उसी के कारण जल मरता है। यह है इन निरीह प्राणियों की उपकार-प्रियता। विभिन्न तथा विषम वृत्तियो के मूर्त्त स्वरूप इन निरीह पुतलों के मस्तिष्क का कोना-कोना झाँकना प्रेमचन्द ही जैसे सफल कलाकार का काम है। देहात की बारीक से बारीक परिस्थियों की इतनी तन्मयता से वर्णन करते हैं मानों वे अपने घर का वर्णन कर रहे हों। उनके दुःखों में पूर्ण सहानुभूति रखते हुए वे एक ठंडी आह खींचते हैं।

कविवर मैथिलीशरण जी की निम्न-लिखित पंक्तियों से वे पूर्णतया सहमत से दिखाई पड़ते हैं।

'जगती कहीं ज्ञान की ज्योती,
शिक्षा की यदि कमी न होती,
तो ये ग्राम स्वर्ग बन जाते,
पूर्ण शान्ति-रस में सन जाते।'

यदि शिक्षा और उन्नति-योजना के लिये धन-व्यय की शक्ति इन ग्रामवासियों को प्राप्त होती, तो इन्हीं कंकालों मे से कितने छिपे हीरे निकल आते। भारत के अधिकांश महापुरुष गाँवों से ही उत्पन्न हुए। भारत की स्वतन्त्रता मुट्ठीभर नगरों के सुधार से नहीं वरन् इन्हीं गाँवों के उत्थान पर निर्भर है। गाँवों की सेवा ही राष्ट्र की सेवा है और प्राय. इसी को ध्यान में रखकर प्रेमचन्द ने अपनी समस्त साहित्यिक कृति का सर्जन किया। अतः एव यह बेखटके कहा जा सकता है कि शरीर के नाते प्रेमचन्द नगरो मे रहे हों पर मन के नाते वे देहात ही में रहे, देहातियो से सहानुभूति रखी, और उन्हें ही उच्च शिखर पर चढ़ाने का स्वप्न देखते रहे। उन्होने जैनेन्द्र को एक बार एक पत्र में लिखते हुए कहा था—भाई! मनुष्य का वस हो, तो कहीं देहात में जा बसे, दो चार जानवर पाल ले, जीवन को देहातियों की सेवा मे व्यतीत कर दे।'

आज कांग्रेस ने सदियों के संघर्ष तथा ऊहापोह के पश्चात् एक मत से यह निश्चय किया है कि भारत की सच्ची उन्नति गाँवों

की उन्नति से है और भारत का सच्चा सुधार ग्राम-सुधार से है। इसीलिए आज देहात-वासियों को उन्नत बनाने के लिए स्कूल, लाइब्रेरी, कोआपरेटिव संस्थाएँ, पंचायत तथा वाचनालय सरकार खोल रही है। प्रेमचन्द ने बहुत पहले अपनी कहानियों और उपन्यासो में इसी ग्राम-सुधार की समस्या को लिया और उसका निराकरण किया। उनकी सहानुभूति तथा हृदय के कोने का एक एक कण इन्हीं ग्राम-वासियों की ओर लगा रहता है। एक साहित्यिक समाज को कैसे उन्नत बना सकता है, यह पाठ आज कांग्रेस सरकार प्रेमचंद से सीख सकती है। निश्चय ही हमारा पराधीन भारत अपने गाँवों को उन्नत बना कर जब पराधीनता की बेड़ियों से मुक्त होगा तो प्रेमचन्द का नाम स्वर्णाक्षरों में लिखा जायगा।

प्रेमचन्द की ग्राम-सम्बन्धी कहानियाँ भी दो वर्गों में विभक्त की जा सकती हैं। १—शुद्ध-ग्राम-सम्बन्धी कहानियाँ, २—गाँव तथा नगर की घटनाओं से मिली जुली कहानियाँ।

ऊपर उन कहानियो का वर्णन हो चुका है, जो पहले वर्ग की है, जिनमें कथानक, पात्र और वर्णन सभी गाँव के हैं। जैसे—'सुजान भगत', 'पंच परमेश्वर', 'अलग्योझा', आदि कहानियाँ। दूसरे वर्ग की कहानियाँ ऐसी हैं, जिनमें गाँवों का वर्णन, नगरो के वातावरण की तुलना में रखा गया है और उसमें गाँवों की श्रेष्ठता सिद्ध की गई है। ऐसी कहानियों में लाल-फ़ीता, हिंसा परमोधर्मः, मंत्र, उपदेश, परीक्षा, नमक का दारोगा, शान्ति, स्वामिनी, गुल्ली-डंडा, सुभागी आदि कहानियाँ हैं।

इनमें से 'मंत्र' और 'हिंसा परमोधर्मः' दो सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ हैं, जिनका यहाँ संक्षेप में उल्लेख किया जायगा। 'मंत्र' नामक कहानी में डाक्टर चड्ढा की स्वार्थपरता का उत्तर बूढ़े चौधरी की निःस्वार्थ सेवा से दिलाकर प्रेमचन्द ने नागरिकों की स्वार्थ-परता से ग्रामवासियों की निःस्वार्थता की तुलना की है, और निष्कर्ष मे ग्राम-जीवन को नगर से श्रेष्ठ ठहराया है। बूढ़ा भगत, जिसके छः लड़के मर गए, सातवें को मृत्यु-शय्या पर पड़ा हुआ छोड़कर डाक्टर चड्ढा को नगर में बुलाने आया था। डाक्टर चड्ढा रूपयों के गुलाम थे। ग़रीब को देखकर, तथा अपने गोल्फ खेलने का समय देख कर, बुड्ढे के लाख घिघियाने पर भी, उसके मरते हुए पुत्र की कुछ सहायता न कर सके। अन्त में सातवें पुत्र के भी मर जाने से बूढ़ा निराश्रित हो जाता है। इधर डाक्टर चड्ढा का एकमात्र पुत्र कैलास एक दिन आमंत्रित मेहमानो को साँप का खेल दिखलाते समय, साँप द्वारा काट लिया गया और अनेक औषधियो के करने पर भी उसकी हालत बिगड़ती गई। बुड्ढा भगत बिना बुलाए ही डाक्टर साहब के यहाँ आया, और उनके एकमात्र पुत्र की जान बचा कर उनके कुल के बुझते हुए दीपक को जला दिया। इस कहानी में प्रेमचंद ने दिखलाया है कि किस प्रकार नागरिकों को अपने मनोविनोद और लोभके सामने दूसरे के प्राणो की क्षति का भी मोह नहीं है। किस तरह करुणा और दया के लिए हृदय में स्थान नहीं रहता। पर देहाती बिल्कुल इसके प्रतिकूल स्वभाव के हाते है। वे लाखों

कष्ट-सहन कर भी, बिना बुलाए ही पर-उपकार के कार्यों में निःस्वार्थ सेवा के लिए सदा प्रस्तुत रहते हैं। इसी प्रकार का चित्रण 'हिंसा परमो धर्मः' नाम की कहानी में है, जिसमें प्रेमचन्द ने दिखलाया है कि नगरों में धर्म का नाम ढोंग और साम्प्रदायिकता का प्रचार और देहातों में धर्म के नाम पर कोई झगड़ा नहीं। इस कहानी द्वारा प्रेमचन्द अंग्रेजी को पोप नामक कवि की वह उक्ति सिद्ध की है जिसमें कहा गया है, जब अज्ञान में ही स्वर्गीय सुखों का वास है, तो चतुर बनना मूर्खता है। अतः अज्ञानी और मूर्ख होते हुए भी ये ग्रामीण, नागरिकों से श्रेष्ठ हैं।

सारांश यह है कि प्रेमचन्द ने जितनी सफाई, मार्मिकता और सहृदयता से इन गाँवों का चित्र खींचा है, वैसा चित्र अब तक हिन्दी का कोई लेखक चित्रित नहीं कर सका। अब तक के उपन्यास और कहानीकार वैभव के लालों को ही अपने उपन्यासों या कहानियों के पात्र बनाकर, उन्हीं के हाव, भाव, विलास, और विनोद की वृत्तियों के वर्णन में अपने कर्त्तव्यों की इतिश्री समझते थे। अब तक ग्राम-सम्बन्धी इतने विशाल साहित्य की रचना नहीं हुई थी। प्रेमचन्द ही सब से प्रथम हिन्दी के लेखक हैं, जिन्होने इतने बड़े पैमाने पर ग्रामीण-साहित्य की रचना की और गाँवों पर अधिक ध्यान दिया। अतः ग्रामीण जीवन का नागरिक जीवन से अविच्छिन्न सम्बन्ध स्थापित करने का एकमात्र श्रेय प्रेमचन्द को ही है। आज भारतवर्ष का सबसे महत्व-

पूर्ण प्रश्न, जो राजनीतिज्ञों, और शासकों के सामने उपस्थित है, वह है ग्राम-सुधार। प्रेमचन्द ने यद्यपि ग्राम-सुधार की कोई योजना नहीं तैयार की, परन्तु गाँवों के स्पष्ट चित्र द्वारा आगामी साहित्यिकों को सचेत कर दिया कि उनका सबसे बड़ा कर्त्तव्य अपनी लेखनी द्वारा ग्रामवासियों की सेवा करना है। इस प्रकार समाज की उन्होंने महान् सेवा की है।

आठवाँ अध्याय

प्रेमचन्द की कहानियों में भारतीय समाज के अन्य वर्ग

नागरिक जीवन

नागरिक जीवन और उसकी विभिन्न समस्याओं पर उतना विस्तृत और पूर्ण प्रकाश प्रेमचन्द ने नहीं डाला है, जितना ग्राम्य-जीवन पर। परन्तु अपने जीवन का अधिकांश भाग नगरों में बिताने के कारण या साहित्यिक-जीवन में नगर-वासियों से अधिक सम्पर्क रखने के कारण, नगर का भी जो कुछ चित्रण प्रेमचन्द ने किया है, वह अच्छा बन पड़ा है। ऐसे चित्रों में भी प्रेमचन्द के नागरिक जीवन के अध्ययन के बड़े ही सुन्दर उदाहरण मिलते है।

नगरों की भी परिस्थितियाँ देहातो से कम जटिल नहीं है। दोनों के अलग-अलग क्षेत्र हैं, और दोनों की परिस्थितियाँ भी भिन्न-भिन्न हैं। जातीय, राजनीतिक, धार्मिक और अन्य सभी प्रकार की समस्याएँ नगरों में ही हल की जाती हैं, यहीं पर अधिकांश उसके उत्पादक और प्रचारक रहते है। प्रेमचन्द ने सैकड़ों कहानियो में इन परिस्थितियों का बड़ा ही यथातथ्य चित्र खींचा है। 'सभ्यता का रहस्य', 'दुस्साहस', 'विषम समस्या', 'लांछन', 'लेखक', 'खुदाई फौजदार' 'दो कब्र', 'मृतक भोज'

आदि कहानियों में नागरिक जीवन की विभिन्न परिस्थितियों का चित्रण है।

इन सम्पूर्ण कहानियो पर दृष्टिपात करने से हमें दो-तीन प्रधान बातें देखने को मिलती हैं, जिनका उल्लेख करना यहाँ आवश्यक होगा। सबसे पहली बात तो यह है कि प्रेमचन्द ने नागरिक जीवन में भी मध्यम और विशेषतया निम्न वर्ग के लोगों का अधिक सफलता से चित्रण किया है। उच्च वर्ग के लोगों को तो उन्होंने बहुत कम चित्रित किया है। दफ्तरी', 'चपरासी', 'विषम समस्या', 'जुरमाना', 'मृतक-भोज' आदि में निम्न वर्ग के उन साधारण लोगो का चित्रण है, जो बड़ी कठिनाई से उपार्जन करके अपना उदर पोषण करते हैं। यदि देखा जाय तो इस प्रकार के लोग भी बड़े सज्जन और अच्छे होते हैं। न तो किसी का लेना, न किसी को देना, वरन् ईमानदारी से चार पैसे कमा कर जीवन व्यतीत करना ही इन लोगों का काम है। 'दफ्तरी' कहानी में 'रियासत हुसेन' के जीवन-संघर्षों का वर्णन करते हुए प्रेमचन्द एक स्थल पर यह कहते पाए जाते हैं:— 'गृह-दाह में जलने वाले वीर रणक्षेत्र के वीरों से कम महत्व-शाली नहीं होते'। इन शब्दो में प्रेमचन्द स्वयं अपने संघर्षमय जीवन का चित्रण करते दिखाई पड़ते हैं। चूँकि इस जीवन से वे भली भाँति परिचित थे, अतः ऐसे लोगो के वर्णन में उन्हें बहुत ही आनन्द आता है। 'लेखक' कहानी में प्रवीण की कठिनाइयो में प्रेमचन्द जी के जीवन को कठिनाइयों का

वर्णन है। इस कहानी में जिस निर्णय पर वे पहुँचते हैं, वह यह है:—

'इसी से आज मुझे हमेशा के लिए सबक मिल गया। मैं दीपक हूँ, और जलने के लिए बना हूँ। मैं इस तत्व को भूल गया था। ईश्वर ने मुझे ज्यादा बहकने न दिया। मेरी यह कुटिया ही मेरे लिए स्वर्ग है। मैं आज यह तत्व पा गया कि साहित्य-सेवा पूर्ण तपस्या है।'

प्रेमचन्द ने अपने और अपने सामयिक साहित्यकों के जीवन को देख कर यह भली भाँति समझ लिया था, कि भारत जैसे दीन देश में साहित्यकों की कोई पूछ नहीं है, उनका सम्मान नहीं है।

किसी भी वर्ग का नागरिक-चित्रण हो, प्रेमचन्द उसमें एक विशेषता अवश्य दिखाते हैं। विशेषतया जब मध्यम तथा उच्च नागरिक कुल के लोगों का चित्रण करते हैं, तब उनको आधुनिक शिक्षा और सभ्यता के कृत्रिम जाल में फँसा हुआ बतला कर उन पर एक व्यंगात्मक और दयनीय दृष्टि डालते हैं। आधुनिक शिक्षा पर, जो पश्चिमी शिक्षा का अनुकरण कर रही है, उन्हें तनिक विश्वास नहीं है। और इसी लिए आधुनिक शिक्षा और सभ्यता के पुजारी नागरिकों से भी वे घृणा करते है, उनकी जगह-जगह दिल्लगी उड़ाते है। शहरों में एक मनुष्य दूसरे को धूर्तता में फँसाकर अपना काम चला लेते हैं। वहाँ इसी का रोज़-गार होता है। मेरे कहने का यह तात्पर्य नहीं है कि सभी नाग-

रिक ऐसे ही होते हैं, उनमें से अनेक पूर्ण सज्जन और आदर्श भी होते हैं। परन्तु अधिकांश झूठे विज्ञापन, प्रलोभन और बनावट के ही पुतले होते हैं। 'डिमांस्ट्रेशन' कहानी मे महाशय गुरुप्रसाद (जो एक साधारण नाटककार हैं) बड़ी धूमधाम से एक थियेटर खोलने का आयोजन करते है। एक नाटक लिखकर वे चाहते है किसी सेठ को फाँस कर उससे रुपया लेना। चार मित्रो को लेकर, जिनकी सच्ची सहानुभूति गुरुप्रसाद जी से नहीं है, और जो, 'जब तक पैसा गाँठ में, तब तक ताको यार' के अनुसार उनके मित्र है, बड़े लम्बे ख्याली पुलाव पकाते हैं, और सेठ जी के यहाँ पहुँच कर, गुरुप्रसाद और उनके नाटक की अत्यधिक प्रशंसा करते हैं। सेठ इनका भी गुरु निकलता है। वह इन लोगो को खिला पिलाकर धता कर देता है।

यही तो इन नागरिकों का जीवन है, जिनको बेवकूफ बनाने में प्रेमचन्द को स्वयं आनन्द आता है। उनके जीवन से प्रेमचन्द यह दिखलाते हैं कि पाश्चात्य सभ्यता और शिक्षा का पग-पग पर अनुकरण करने के कारण प्रायः भारतीय नागरिक भी भौतिक, मक्कार और स्वार्थी हो जाते है। 'मृतक-भोज' कहानी में रमानाथ नाम के एक मारवाड़ी की मृत्यु के पश्चात्, उसके मक्कार भाई-बिरादर आपस के बदले को उसके परिवार से मिटाते है। एक जातीय भोज करा कर उसके मकान और सारी सम्पत्ति को नीलाम करा देते हैं, और उसकी विधवा पत्नी को घर से निकाल देते हैं। अन्त में वह बेचारी एक लड़की और

एक लड़की के साथ पास के एक कुँजड़े के घर में आश्रय पाती है, और जब उसकी लड़की विवाह योग्य हो जाती है, तो एक ६० वर्ष का बूढ़ा उस विधवा को उसकी लड़की का उससे विवाह कर देने के लिए धमकी देता है। कितना नारकीय और घृणित जीवन है। 'कुसुम' कहानी में कुसुम नाम की अत्यन्त निर्दोष पत्नी से उसका पति इसलिए जी जान से खफा है, कि कुसुम का पिता उसको इतनी रकम नहीं देता जिससे वह इङ्गलैण्ड जाकर ऊँची शिक्षा प्राप्त करे। नई रोशनी के नागरिक शिक्षितों की स्वार्थपरता का कितना सुन्दर चित्रण है। 'खुदाई फौजदार' नामक कहानी में सेठ नानकचन्द जो एक करोड़पति है, एक दिन एक गुप्त चिट्ठी पाते है, जिसमें उन्हें कुछ डाकुओं द्वारा उनकी सम्पूर्ण सम्पत्ति एक दिन लूट लेने की धमकी दी गई थी। बेचारे पागल से होकर पुलिस के अधिकारी-वर्ग को सूचना देते है, और उन्हें अत्यन्त विश्वसनीय समझ कर सारी सम्पत्ति थाने में धरोहर के लिए भेज देते हैं। रास्ते में पुलिस के कर्मचारी उन्हें धक्का मार कर भगा देते है, और उनकी सम्पत्ति पर अधिकार जमा लेते हैं। कुछ दिन बाद सेठ को यह सुनकर और भी आश्चर्य होता है कि धमकी देने वाले डाकू, कोई अन्य नहीं पुलिस के वे ही कर्मचारी थे। यह तो है भारतीय पुलिस के रक्षा की जिम्मेदारी का पालन। 'मन्त्र' नामक कहानी में डाक्टर चड्ढा एक बुड्ढे के मरणासन्न बालक को इसलिए देखने नहीं जाते कि वह उनकी फीस नहीं दे सकता और इसीलिए उसे यह कह कर हटा देते है

कि उस समय वे गोल्फ खेलने जा रहे हैं। 'वेश्या' नामक कहानी में एक मित्र दूसरे को वेश्या के चंगुल से छुड़ाने के बदले स्वयं चंगुल में फँस जाता है, और परिणामतया दोनों एक दूसरे के घोर शत्रु हो जाते है। 'लांछन' नामक कहानी में आधुनिक सभ्यता में पले हुए एक दफ्तर के बाबू का चित्रण है जो स्वय तो पर-स्त्री गामी या वेश्यागामी और शराबी है, परन्तु अपनी सती साध्वी स्त्री पर इसलिए शक करते हैं कि वह एक मेहतर से बातें करती है। यह शक यहाँ तक बढ़ जाता है कि, उसको घर से वे पीट कर निकाल देते है और वह एक मुसलमान के हाथ में पड़ जाती है। नागरिक जीवन की यह एक दैनिक घटना है। 'दो बहनें' नामक कहानी में रूपकुमारी के पति गुरुसेवक के चरित्र से प्रेमचन्द स्पष्टतया दिखलाते है कि किस प्रकार नागरिक के ढोल में पोल रहती है, तथा वे बनावटी ठाट-बाट के उपासक होते हैं। गुरुसेवक को उसके साढ़ू बहुत बड़ा अफसर समझते थे। वह एक प्रकार की शान में रहता था और लम्बी चौड़ी हाँकता था यह कह कर कि उसकी मासिक आय. एक हजार रुपये हैं। परन्तु एक दिन शराब के नशे मे अपनी सच्ची स्थिति का पता वह स्वयं बता देता है।

'मै मिसेज लोहिया का मुख्तार हूँ, सब कुछ मेरे हाथ मे है। वह मुझे अपना बेटा समझती है। मैं उसकी सारी जायदाद का मालिक हूँ। मिस्टर लोहिया ने मुझे २०) पर रक्खा था, २०) पर। वह बड़ा मालदार था। मगर किसी को मालूम नहीं,

उसकी दौलत कहाँ से आती थी। किसी को मालूम नहीं, मेरे सिवा कोई नहीं जानता। वह खुफ़ियाफ़रोश था। किसी से कहना नहीं। वह चोरी से कोकीन बेचता था। लाखों की आमदनी थी उसकी। अब यही व्यापार मैं करता हूँ। हर शहर में हमारे खुफ़िया एजेण्ट हैं। मि० लोहिया ने इस फ़न में मुझे उस्ताद बना दिया। जी हाँ। मजाल नहीं कि मुझे कोई गिरफ्तार कर ले। बड़े बड़े अफसरों से मेरा याराना है। उनके मुँह में नोटों के पुलिन्दे ठूँस-ठूँस कर उनकी आवाज बन्द कर देता हूँ। कोई चूँ नहीं कर सकता, दिन दहाड़े बेचता हूँ। हिसाब में लिखता हूँ एक हजार रिशवत दी, देता हूँ पाँच सौ, बाकी यारों का है। मुझे दुआ दीजिए कि इसी शान से जिन्दगी कट जाय। जो आत्मा और सदाचरण के उपासक हैं, उन्हें कुबेर लातें मारता है। लक्ष्मी उनको पकड़ती है, जो उसके लिए अपना दीन और ईमान सब कुछ छोड़ने को तैयार हैं।' यह है अधिकांश नागरिकों की जीवन-यापना का तरीक़ा।

पाश्चात्य सभ्यता ने भारतीय नगरों का जीवन विषमय बना दिया है। घूस, जालसाजी, दिखावट और मक्कारी का सर्वत्र प्रचार हो गया है। हर एक का जीवन रहस्यमय है, ऊपर से कुछ और, भीतर से कुछ। ऊपर से तो नागरिक मनुष्य साफ सुथरा, सभ्य, शिष्ट और बड़े ही विनम्र व्यवहार से पेश आता है और भीतर तमाम फ़रेबों और बनावटीपने का भंडार लिए रहता है। इसीलिए इन ऊपरी तौर पर सभ्य नागरिकों

से प्रेमचन्द उन ग्रामीणों को ही अधिक पसंन्द करते हैं, जो प्रेम करेंगे तो दिखाकर, लड़ेंगे तो सामने और जिनमें बाहर-भीतर एक ही है।

परन्तु जैसा कि सभी लोग कहते हैं और उचित कहते हैं, प्रेमचन्द को इस नागरिकचित्रण मे पूर्णता नहीं प्राप्त हुई है। उनका ध्यान नागरिकों के दुर्गुणो और मक्कारियों पर ही अधिक गया है। परन्तु नगर के सभी रहने वाले धूर्त्त, मक्कार और स्वार्थी नहीं रहते। नगरों मे अनेक धर्मात्मा, विद्या-व्यसनी, परोपकारी, ईमानदार तथा केवल अपने परिश्रम और बल से जीविका-उपार्जन करने वाले लोग भी रहते हैं। ऐसे लोगों के जीवन की झलक तक प्रेमचन्द ने अपनी कहानियों में नहीं दिखाई है। हाँ, कहीं-कहीं किसी नागरिक पात्र की बुराइयों का चित्रण करते हुए प्रेमचन्द उसी कहानी मे एक सज्जन पात्र भी तुलना के लिए रख देते है और इस प्रकार कहानी को आदर्शात्मक ढंग से समाप्त कर देते हैं। 'आहुति', 'रहस्य', 'डिक्री के रूपये', 'प्रायश्चित', 'महातीर्थ', 'शान्ति' आदि कहानियाँ ऐसी हैं। 'दो बहनें' कहानी में भी गुरुसेवक की धूर्तता की तुलना मे उमानाथ नामक शिष्ट व्यक्ति आता है, जो इमानदारी से जीवन-व्यतीत करता है। अन्त मे उसी के जीवन को प्रेमचन्द प्रधानता देते हैं। 'माँगे की घड़ी' में आवश्यकता से अधिक व्यय करने वाले पात्र को दानूबाबू द्वारा जीवन में संचय करना सिखाते है। अतः प्रेमचन्द कहीं-कहीं नागरिकों की

सज्जनता की भी वर्णन कर देते है, परन्तु उनकी दृष्टि अधिकांश नागरिकों के दुर्गुणों पर ही जाती है। इस कारण उनका नागरिक चित्र अपूर्ण है। हाँ इतना अवश्य कहा जा सकता है कि चाहे आंशिक ही क्यों न हो, प्रेमचन्द ने जिस भाग का चित्रण किया है, वह अत्यन्त सत्य है, उसमे उनके नागरिक जीवन के सूक्ष्म अध्ययन का पूर्ण परिचय प्राप्त होता है।

परन्तु इतना होते हुए भी प्रेमचन्द का नागरिक चित्रण अधूरा है। उन्हें यह भी दिखलाना चाहता था कि नगरो मे ही शिक्षा के केन्द्र होते हैं। वहीं पर सामाजिक सुधार, और जीवन के नैतिक एवं धार्मिक-उत्थान पर रात दिन विचार-विमर्श होता है। वहाँ देहातियों की तरह लोग हाथ पर हाथ धरे, अकर्मण्य बनकर बैठे नहीं रहते, वरन् वे देश की राजनीतिक तथा सामाजिक परिस्थितियो से पूर्ण परिचित रहते हैं, उसके उत्थान की समस्याओं पर न केवल विचार करते, परन्तु सक्रिय भाग भी लेते है।

'धार्मिक और राजनीतिक समस्याएँ'

कहानीकार के लिए कहानी के छोटे आकार में धार्मिक गुत्थियों को सुलझाने का न तो अवकाश ही रहता है, न उसकी आवश्यकता ही होती है। परन्तु उस परिमित क्षेत्र में भी प्रसंगानुकूल वह पात्रों के मुख से धार्मिक रूढ़ियों की समीक्षा कर सकता है। उसी से हम लेखक के धार्मिक दृष्टिकोण का पता चलाते हैं।

प्रेमचन्द उन लेखको मे थे, जो हिन्दू होते हुए भी हिन्दू धर्म के परंपरागत और रूढ़िगत विचारों से सहमत नहीं थे। वे समय के परिवर्तन के साथ, धार्मिक रूढ़ियों मे भी परिवर्तन करते हुए उसे आधुनिक सामाजिक जीवन के अनुकूल बनाना चाहते थे। उन्हें ऐसे धर्म से घृणा थी, जो समाज की सर्वांगीण उन्नति मे बाधा डाले। पाश्चात्य देशों मे धर्म के नाम पर होने वाले भीषण रक्तपात और अत्याचारों से वे पूर्ण परिचित थे। परिणामतया सभी धर्मों का समान रूपसे सम्मान करते हुए भी, तथा उनकी अच्छाइयों को ग्राह्य बताते हुए भी, जहाँ कही उन्हें अवसर मिला है, उनकी बुराइयों का नंगा चित्र खींचा है। उनके धार्मिक विश्वासों की व्याख्या करते हुए, यह पहले ही कहा जा चुका है, ईश्वर मे उनका विश्वास न था। जीवन-संघर्ष मे अनधिकारियो तथा अयोग्यों को सफल होते और मौज उड़ाते, तथा योग्य व्यक्तियों को विपत्तियो भोगते देखकर, न्याय करनेवाली परोक्ष सत्ता मे उनका विश्वास न रह गया था, ऐसा उन्होने स्वयं कई बार कहा था। इसलिए जब उन्हें कोई नास्तिक कहता था, तो वे हृदय से उसको धन्यवाद देते थे, उसका स्वागत करते थे, क्योंकि वे ऐसे आस्तिकों से कोसो दूर रहना चाहते थे, जो धर्म को अपने स्वार्थपूर्ति का साधन बनाकर, अपने दोषों को छिपाने का आवरण बनाकर, मनुष्य-जाति के पारस्परिक प्रेम को वैमनस्य में परिणत करके, संपूर्ण सामाजिक सुख और शान्ति को एक कलह-कुण्ड बना देना चाहते हैं।

अछूतों की समस्याः—तो महात्मा गान्धी की कृपा से आज बहुत कुछ हल हो गई है, क्योंकि उन्हें शिक्षा और सामाजिक सुख-सम्बन्धी अधिकार सरकार द्वारा भी दिए जा रहे हैं। परन्तु बीस वर्ष पहले उनकी समाज में क्या अवस्था थी, और अब भी देहात के धर्मात्मा और उच्च कुल के लोगों द्वारा उन पर क्या व्यवहार किया जाता है, प्रेमचन्द ने इसी दृश्य का वर्णन अपनी कुछ कहानियों में बड़े ही सफल रूप से किया है। महात्मा गान्धी के भक्त होने के कारण प्रेमचन्द भी हृदय से यह चाहते थे कि उनकी हालत में कुछ सुधार हो। अछूत-सम्बन्धी कहानियाँ प्रेमचन्द ने कुछ इनी गिनी ही लिखी हैं। उनमें से 'मन्दिर', 'सद्गति', 'आगा पीछा', 'दूध का दाम', 'कफन', 'जुरमाना', और 'मंत्र' आदि कहानियाँ अच्छी हैं। इन सभी कहानियों में समाज में अछूतों की दीनावस्था का बड़ा ही संश्लिष्ट और मार्मिक चित्रण है। 'मंदिर' कहानी में सुखिया नाम की एक चर्मकारिन का चित्रण है, जिसका एकमात्र शिशु विशेष-रोग-ग्रस्त था। बहुत दिनों पर भी जब उसकी बीमारी में कोई अन्तर न आया, तो अकस्मात् एक दिन माता के हृदय में यह बात बैठ गई कि ठाकुर जी की पूजा करने से शायद बच्चा अच्छा हो जाय। बड़ी कठिनाई के पश्चात्, अपने आभूषणों को बेचकर उसने पूजा के लिए सामान इकट्ठा किया। और जब वह बच्चे को लेकर मन्दिर में पहुँची, तो पुजारी ने अछूत समझ कर उसे ऐसा धक्का दिया कि बच्चा मर गया। हिन्दू-समाज की यह एक

साधारण सी घटना है, और इस प्रकार की लाखों मौतें हो गई होंगी। इसी प्रकार 'सद्गति' कहानी में दुःखी चमार पं० जी के दरवाजे पर बेगार करते हुए मर जाता है। 'दूध का दाम' नामक कहानी में भी एक अछूत-दुर्दशा की दूसरी झाँकी दिखाई जाती है। बाबू महेश नाथ की स्त्री पुत्रोत्सव के उपरान्त ही मर जाती है। नवशिशु के लालन-पालन का भार भूँगी नाम की दाई पर आता है, जिसने सारे परिवार को दूध पिला कर बड़ा किया था। भूँगी जाति की चर्मकारिन थी। भूँगी इस नए पुत्र को भी पाल-पोस कर बड़ा करती है, और अकस्मात एक दिन अपने एकमात्र पुत्र को छोड़ कर परलोक सिधार जाती है। बाबू महेश नाथ भूँगी के पुत्र को घर के बाहर रखकर कुत्ते की तरह घरका जूठन खिला दिया करते है। दिन एक भूँगी का पुत्र खेलते समय भूल से बाबू महेश नाथ के पुत्र को छू देता है, और इसी दोष पर वह घर से निकाल दिया जाता है। वही भूँगी का पुत्र केवल स्पर्श के कारण उनकी कुलीनता में बाधा डालता है, यद्यपि भूँगी के दूध से पलकर सारा परिवार बड़ा होता है। हमारे समाज का कितना हृदय-विदारक और दयनीय चित्र है। जिनके अथक परिश्रम का उपभोग सारा समाज करता है, जो जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त समाज-सेवा ही में अपना जीवन व्यतीत करते हैं, उनके साथ कुत्तों से भी निकृष्ट व्यवहार करना, यहाँ तक कि यह समझना कि उनको स्पृश्य मानने से भी कुल कलंकित हो जाता है। ऐसे धर्म

और धर्मालंबियों का कौन अनुसरण करेगा। प्रेमचन्द धर्म के इस स्वरूप को न मानें, और उस पर यदि आलोचना करें तो यह उनकी उदारता और सहृदयता का परिचायक है।

अपने ही नहीं, वरन् अन्य धर्मों में भी, धर्म की आड़ में होनेवाले अत्याचारों, तथा स्वार्थ-पूरक साधकों को प्रेमचन्द ने जोर-शोर से निन्दा की है। 'दिल की रानी' कहानी में हवीबा तैमूर को, जो धर्म-विरुद्धों के खून की धार बहाकर ही अपने को सच्चा धर्मात्मा होने का दावा रखती थी, धर्म का उद्देश्य शत्रुओं पर सहानुभूति रखना बताया गयाहै। 'हिंसा परमो-धर्मः' काहनी में हिन्दू और मुसलमान दोनों धर्मों के पुजारियों और मुल्लाओ की बड़ी कड़ी-निन्दा की गई है। जामिद नामका एक भोला-भाला देहाती मुसलमान, एक नगर मे पहले पहल आता है और बड़े-बड़े मन्दिरों और सन्ध्या-पूजा के विस्तृत विधानो को देखकर, शहर के सभी हिन्दुओं को उच्च धार्मिक भावना में तल्लीन समझता है। इधर पुजारी लोग उसे एक बेवकूफ और अपने जाति से निष्कासित मुसलमान समझ कर उसकी शुद्धि कर लेते है। परन्तु एक दिन एक असहाय मुसल-मान पर पुजारी को अत्याचार करते देखकर, जामिद मुसलमान की सहायता करता है। उसकी इस दशा को देखकर पुजारी लोग उसे पीट कर निकाल देते हैं। अब काज़ी साहब जामिद को अपने यहाँ ले जाकर शुद्ध करते हैं। परन्तु एक दिन यह देख कर कि काज़ी साहब भी एक भगाई हुई हिन्दू-स्त्री पर बला-

स्कार करना चाहते हैं, वह काज़ी साहब को धक्के देकर उस स्त्री को उसके घर ले जाकर पहुँचा देता है। और इन दोनों धर्मों के आधुनिक स्वरूपों को, जहाँ धर्म का अर्थ अत्याचार और पाखंड है, दूर से ही नमस्कार करता है। ऐसी और कई कहानियों द्वारा प्रेमचन्द ने यह बतलाया है कि आज भारतीय समाज मे धर्म लोगों के स्वार्थों की पूर्ति तथा कुवृत्तियों को संतुष्ट करने का साधन बन रहा है। इसीलिए उन्होंने पडे, पुजारियो और महन्तो की खूब आलोचना की है। पं० मोटेराम शास्त्री की डायरियो से प्रेमचन्द ने यह दिखाया है कि किस प्रकार बहुत से अल्पज्ञ पडित, बड़ी-बड़ी बातें बनाकर सम्पूर्ण रोगो तथा विपत्तियों के दूर करने का ठेकेदार बन कर समाज को धोखा देते है। निमंत्रण और सत्याग्रह आदि कहानियों मे भी भुक्खड़ ब्राह्मणो के इसी आडम्बर की खिल्ली उड़ाई गई।

यह कहा जा सकता है कि प्रेमचन्द का धार्मिक चित्रण अधूरा है, क्योकि धर्म के नाम पर अत्याचार ही नहीं होते, वरन् उपकार और उन्नति भी होती है। सभी पंडित और मुल्ला धूर्त और स्वार्थी हीनहीं होते, वरन् उनमे से कुछ आदर्श भी होते है। यह सब माना जा सकता है। परन्तु लेखक का काम धार्मिक प्रथा के अन्तंगत आए हुए दोषों को दिखाकर उससे लोगो को सावधान कर देना है। वही काम प्रेमचन्द ने भी किया है।

प्रश्न हो सकता है कि आडम्बर तथा ऐसे अपूर्ण धर्मों का

विरोध करते हुए, प्रेमचन्द किस धर्म को मानते हैं, और उनके धर्म का स्वरूप क्या है? इसका उत्तर यदि थोड़े से शब्दों में दिया जा सकता है, तो यह है कि प्रेमचन्द उसी धर्म को मानते हैं, जो सामाजिक विकास में बाधक न होकर साधक हो और जिससे लोगों में भाईचारा बना रहे; अथवा यदि दो शब्दो में उनके धर्म का मूल मंत्र कहा जा सकता है, तो वह है 'समाज-सेवा'। इन्होंने अपनी अनेक कहानियों में सेवा के महत्व को दिखलाया है। उदाहरण के लिए 'मंत्र' नामक कहानी लीजिए। पं० मोटेराम शास्त्री हिन्दू महासभा के कर्णधार हैं। मदरास से हिन्दू महासभा के मंत्री के पास यह सूचना आई कि वहाँ मुसलिम-लीग वाले गाँव के गाँव अछूत हिन्दुओं को फुसला कर अपने धर्म में मिला रहे हैं। पं० मोटेराम जी महासभा द्वारा अछूतों को मुसलमान बनने से बचाने के लिए भेजे जाते है। परन्तु कोरे लेक्चरों और ऊपरी सहानुभूति से वे पद-दलितों को मुसलमान होने से बचा न सके। एक दिन एक अछूत ने पं० जी से पूछा कि क्या वह उसके साथ भोजन करने को प्रस्तुत हैं, तो उन्होंने अस्वीकार किया, सभी अछूत वहाँ से उठकर चले गए और उनमें से तब कुछ लीग की शरण में गए, जहाँ सबके लिए द्वार खुला था। इसी बीच एक दिन पं० जी को कुछ मुसलमान मार कर अधमरा कर देते है। उन्हीं अछूतो में से एक उनको अपने उपकार के लिए आया हुआ जानकर उन्हें घर ले जाता है, सेवा-शुश्रूषा

से उन्हें पूर्ण स्वस्थ बना देता है। कुछ दिन बाद गाँव में भयंकर प्लेग का प्रकोप होता है। लोग घर छोड़कर भागने लगते हैं। बूढ़े अछूत को छोड़ कर उसके घरवाले भाग जाते हैं। बहुत मना करने पर भी पं० जी बूढ़े तथा अन्य रोगियों की सेवा के लिए रुक जाते है, और शहर से बड़ी कठिनाई उठाकर औषधि लाते और अपने परिश्रम तथा सेवा से उन रोगियों के प्राण बचा लेते है। इस सेवा का समाचार समस्त अछूत-गाँवों में फैल जाता है। फलतः बिना बुलाए ही अछूत हिन्दू-धर्म की शरण में आने लगते है। जो कार्य इतने व्याख्यानो और धार्मिक प्रचारकों के कोरे उपदेशपूर्ण बचनो से नहीं हो पाया था, वह पं० जी की सेवा और प्रेम से हो जाता है। इसी समाज-सेवा को प्रेमचन्द धर्म का मूल तत्व समझते थे। उन्होंने एक स्थल पर कहा है:—

'भगवान जितना दयालु है, उससे असंख्य गुना निर्दय है। और ऐसे भगवान की कल्पना से मुझे घृणा होती है। प्रेम सब से बड़ी शक्ति कही गई है। विचारवानों ने प्रेम को ही जीवन और संसार की सबसे बड़ो विभूति मानी हैं। व्यवहार मे न सही, आदर्श में ही सही प्रेम ही हमारे जीवन का सत्य है।'

इसी प्रेम और सेवा को प्रेमचन्द धर्म का मूल तत्व मानते थे, और इसको उन्होने कहानियो मे पात्रों के मुँह से कहला कर ही नहीं, अपने व्यवहारिक जीवन मे भी करके दिखाया।

'राजनीतिक समस्या'

अपने 'जीवन-सार' नामक लेख में प्रेमचन्द ने अपने संघर्ष-मय जीवन के क्रमिक विकास पर प्रकाश डालते हुए उस स्थल का भी वर्णन किया है जब कि १९२० में असहयोग आन्दोलन के समय महात्मा गान्धी के व्यक्तित्व ने इनको इतना प्रभावित किया कि उन्होंने अपनी बीस वर्षों की नौकरी से इस्तीफा देकर साहित्य द्वारा समाज और राष्ट्र की सेवा का व्रत ले लिया। उसी समय से प्रेमचन्द ने लेखनी द्वारा समाज-सुधार तथा राष्ट्रोत्थान के लिए अपना जीवन दे दिया। समाज के विभिन्न अवयवों पर प्रकाश डालकर सुधार की जो योजना उन्होंने कहानियों में रक्खी उस पर काफी विचार हो चुका है। अब उनके राजनीतिक दृष्टि-कोण पर विचार करना चाहिए।

समाज और राष्ट्र दो भिन्न चीजें नहीं हैं। समाज से ही राष्ट्र बनता है। अतः एक प्रकार से राष्ट्र समाज की विभिन्न समस्याओं का विशाल चित्रसा है। उदाहरण के लिए अछूतों और पद-दलितों के लिए मन्दिर का द्वार खोलना, उन्हें शिक्षित बनाना, अन्य वर्गों के समान उन्हें अधिकार देना आदि हमारे राष्ट्र की मुख्य समस्याएँ हैं, जिनका महात्मा गान्धी के परिश्रम से पूना-ऐक्ट के पश्चात् समाधान हुआ। प्रेमचन्द स्वयं अछूतों को समान अधिकार देना चाहते थे, इस का ऊपर निर्देश हो चुका है। ग्राम-सुधार और ग्राम-सङ्गठन का, जो आज राष्ट्र

की राजनीतिक समस्याओं में सब से प्रधान हैं, और जिसके लिए भारत के सभी वर्ग प्रयत्न कर रहे है; प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों और कहानियों में किस प्रकार समर्थन किया है, यह बताया जा चुका है। इसी प्रकार शासक द्वारा शासित वर्ग पर होने वाले अत्याचारों का, और न्याय एवं शिक्षा आदि विभागों की अवस्थाओं पर, प्रेमचन्द ने भली भाँति विचार किया है। आज भारत में बहुत सी फैक्टरियाँ भी स्थापित हो गई हैं, जिनमें लाखों मजदूर नित्य काम करते हैं। इन मज़दूरों पर पूँजीपतियों का कैसा अत्याचार होता है, तथा मज़दूर भी किस प्रकार कभी-कभी सुसंगठित हो जाते है, इसका चित्र प्रेमचन्द ने 'डामुल का कैदी' नामक कहानी में खींचा है।

इसके अतिरिक्त कुछ ऐसी भी कहानियाँ प्रेमचन्द ने लिखी हैं, जो शुद्ध राजनीतिक कही जा सकती हैं। 'सुहाग की साड़ी,' 'होली का उपहार', 'सत्याग्रह', 'आहुति', और 'कुत्सा' आदि कुछ ऐसी भी कहाँनियाँ प्रेमचन्द ने लिखी हैं, जिनमें कांग्रेसी कार्यकर्त्ताओं के जीवन का वर्णन करते हुए, तथा राष्ट्र-स्वातंत्र्य की अन्य समस्याओ पर प्रकाश डालते हुए स्वतन्त्र भारत या स्वराज्य का क्या रूप होना चाहिए, इस का भी प्रेमचन्द ने संकेत किया है। कुछ कहानियों में यह दिखलाया गया है कि किस प्रकार कुछ लोग किन्ही विशेष परिस्थितियों में पड़कर, किसी आकस्मिक घटना से प्रभावित होकर देश-सेवी हो जाते हैं, परन्तु ऐसे लोगों का प्रेम अटल नहीं रहता वरन् ऐसे लोग धोखा ही देते

हैं। 'होली का उपहार', 'सुहाग की साड़ी', 'आहुति' और 'सत्याग्रह' आदि कहानियों में ऐसा ही चित्रण है। 'होली का उपहार' में अमरकान्त, जो अपनी स्त्री के लिए एक विदेशी साड़ी उपहार में ले जा रहे थे, कुछ देश-भक्त महिलाओं के प्रभाव से विदेशी कपड़ों के विरोधी हो जाते हैं। यह कहानी शायद उसी समय लिखी गई थी, जब कुछ वर्ष पूर्व देश-भक्तों ने विदेशी कपड़ो की होली जलाई थी।

'आहुति' नामकी कहानी में विश्व-विद्यालय का एक छात्र अपनी पढ़ाई को छोड़कर, स्वराज्य संघ में मिल जाता है, और कई एक व्यक्तियों को साथ ले जाता है।

इन कहानियों के पढ़ने से हम दो तीन निष्कर्षो पर पहुँचते हैं जिनका चित्रण प्रेमचन्द के उद्देश्य है। पहली वात है देश-सेवा का भाव, किसी स्वार्थ या कार्य-विवशता से नहीं बिना सोचे समझे किसी आकस्मिक प्रभाव से नहीं, वरन् पूर्ण रीति से सोच समझकर और सच्चे हृदय से, अलापना चाहिए। 'आहुति' कहानी में दिखाया गया है कि बहुत से छात्र परीक्षा में फेल होने के भय से या किसी विशेष सम्मान पाने की लालसा से देश-भक्त हो जाते है। परन्तु ऐसा होना नही चाहिए। राष्ट्र-सेवी को सच्चे हृदय से, पूर्ण रीति से सोच विचार कर, इस क्षेत्र में आना चाहिए। केवल यश और नाम कमाने के लिए जो इस संस्था में आना चाहते है, जैसा आज कल बहुत लोग करते हैं, वे राष्ट्र-सेवा करने के बदले राष्ट्र-

को धोखा देते हैं। 'सत्याग्रह' और 'कुत्सा' कहानी में इसी प्रकार का वर्णन है। 'कुत्सा' नाम की कहानी में प्रेमचन्द ने कुछ ऐसे कांग्रेसी कार्यकर्त्ताओं का चित्रण किया है, जो के चन्दे के पैसे से सिनेमा देखते, हवाखोरी करते, और अनेक प्रकार के मौज उड़ाते है। जिस शराब की दुकान पर दूसरों को शराब खरीदने से रोकने का धोखा देते है, वहीं से स्वय उनके पीने के लिए शराब आती है। ऐसे नर-कीटक, देश-द्रोही क्या देश में नहीं है? बहुत से है। प्रेमचन्द का कहना है कि पहले तो राष्ट्र-सेवा के मैदान मे बहुत सोच समझ कर कूदना चाहिए। अगर आवे तो मनुष्य को त्यागी और निःस्वार्थ होना चाहिए।

'कुत्सा' नामक कहानी में प्रायः वे यही कहते हैं:—

"एक दिन मै अपने दो-तीन मित्रों के साथ बैठा हुआ एक राष्ट्रीय संस्था के व्यक्तियो की आलोचना कर रहा था। हमारे विचार से राष्ट्रीय कार्यकर्त्ताओ को स्वार्थ और लोभ से ऊपर रहना चाहिए। ऊँचा और पवित्र आदर्श सामने रख कर ही राष्ट्र की सच्ची सेवा की जा सकती है।' प्रेमचन्द का यह कहना कितना सत्य है। आज यदि ध्यान से देखा जाय तो, ऐसे सच्चे और त्यागी देश-सेवको की संख्या उँगलियों पर गिनने योग्य है। इसी कारण से स्वराज्य मिलने मे भारत को इतनी कठिनाई हो गई थी। ऐसे नि स्वार्थ और त्यागी देश-भक्तों को, जो जीवन के समस्त सुखो पर लात मार कर एक बार

देश-भक्ति की गंगा में कूद पड़े, वह दूसरों द्वारा हँसते नहीं देख सकते थे। ऐसे लोग जो आज कल विश्व-विद्यालय की डिग्रियों को, कोरी देश-भक्ति या बन्देमातरम् के कहने से अच्छा समझते हों, उनको प्रेमचन्द नीची निगाहों से देखते थे। 'आहुति' कहानी में इसी विचार को उन्होंने रूपमणि के मुँह से कहलाया है। 'क्या डिगरी ले लेने से ही आदमी का जीवन सफल हो जाता है? सारा अनुभव, सारा ज्ञान क्या पुस्तकों में ही भरा है? मैं समझती हूँ, संसार और मानवी चरित्र का जितना अनुभव विश्वम्भर को जेल के दो सालों में हो जायगा, उतना दर्शन और कानून की पोथियों से तुम्हें २० साल में भी न हो सकेगा। अगर शिक्षा का उद्देश्य चरित्र-बल है, तो राष्ट्र संग्राम में मनोबल के जितने साधन हैं, पेट के संग्राम मे कभी हो ही नही सकते। राष्ट्र-हित के लिए प्राण देनेवालों को वेवकूफ बनाना मुझसे नहीं सहा जाता। विश्वम्भर के सामने आज लाखों आदमी सीना खोलकर खड़े हो जायँगे। जिन लोगों ने तुम्हें पैरों के नीचे कुचल रखा है, जो तुम्हें कुत्तों से भी नीच समझते हैं, उन्हीं की गुलामी करने के लिए तुम डिग्रियों पर जान देते हो।'

सारांश यह है कि प्रेमचन्द ने भली भाँति देख लिया था, राजनीतिक सैनिक किन दुर्बलताओं में फँसे हैं और किस प्रकार वे आधे दिल से राष्ट्र-सेवा-संघ मे आते हैं। उनका कहना था, कि अपनी परिस्थितियों के कारण यदि कोई देश-भक्त न हो सके, तो कोई हर्ज नहीं, परन्तु जो देश-भक्त है, वे सबके आदर और

सत्कार के पात्र है। उनका यह भी कहना था कि मनुष्य जीवन के किसी भी क्षेत्र में हो, या कोई भी परिस्थिति उसके मार्ग में हो, देशहित के लिए यथासम्भव सबको कुछ न कुछ करना चाहिए तभी भारत को स्वराज्य मिल सकता है।

भारत और विदेश के भिन्न भिन्न राजनीतिज्ञों मे भारत को दिए जाने वाले स्वराज्य की ठीक ठीक रूप-रेखा और उसके स्वरूप पर निरन्तर वाद विवाद चल रहा था। किन्तु प्रेमचन्द के स्वराज्य के स्वरूप की एक रूप-रेखा निर्धारित थी। वे स्वराज्य तो अवश्य चाहते थे, परन्तु आदर्शरूप में। 'आहुति' कहानी मे रूपमणि के मुँह से कहलाते हैं :—

'अगर स्वराज्य आने पर भी सम्पत्ति का यही प्रभुत्व रहे, और पढ़ा लिखा समाज यो ही स्वार्थान्ध बना रहे, तो मैं कहूँगी, ऐसे स्वराज्य का न आना ही अच्छा। अङ्गरेजी महाजनो की धनलोलुपता और शिक्षितों का स्वार्थप्रेम ही आज हमे पीस डाल रहा है। जिन बुराइयों को दूर करने के लिए आज हम प्राणों को हथेली पर लिए हुए हैं, उन्हीं बुराइयों को क्या प्रजा इसलिए सिर चढ़ाएगी कि वे विदेशी नहीं स्वदेशी है? कम से कम मेरे लिए तो स्वराज्य का यह अर्थ नहीं है कि जॉन की जगह गोविन्द बैठ जाय। मैं समाज की ऐसी व्यवस्था देखना चाहती हूँ, जहाँ कम से कम विषमता को आश्रय मिल सके।'

परिणामतया प्रेमचन्द सामाजिक नियमो मे एक न्याय स्थिर करना चाहते थे। वे नहीं चाहते थे कि हमे ऐसा स्वराज्य

मिले, जिसमें एक वर्ग का दूसरे पर प्रभुत्व बना रहे। परन्तु उस स्वराज्य को वे श्रेयस्कर समझते थे जो सबके अधिकारों की पूर्ण रक्षा करे, तथा समाज के सभी वर्गों के साथ उचित व्यवहार करे। आज दिन राजनीति के प्रत्येक क्षेत्र में स्वराज्य के इसी स्वरूप को निश्चित करने के लिए विभिन्न मत रखे जाते है। कोई पाकिस्तान लेकर बैठा है तो कोई वैधानिक संघ कोई राष्ट्र-संघ तो कोई लोक-तन्त्र। कौन मत ठीक है इसका कहना असम्भव है। सब के अलग अलग विचार हैं, सबकी अलग-अलग धारणाएँ हैं। प्रेमचन्द ने भी उसी प्रकार अपने ढङ्ग से परिमित सीमा में राजनीतक समस्याओं का समाधान किया, और स्वाराज्य की रूप-रेखा खींची। प्रेमचन्द एक साहित्यिक थे। इससे बढ़कर उनसे और क्या आशा की जा सकती थी, कि उन्होंने अपनी लेखनी द्वारा राष्ट्र की विभिन्न परिस्थितियों पर प्रकाश डाला, और उसका आदर्श रूप क्या होना चाहिए, इस ओर भी संक्षेप में संकेत किया।

हिन्दू-मुसलिम-एकता—आज राष्ट्र की सब से प्रमुख समस्या बनी हुई है। आज हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे के रक्त के प्यासे हो रहे हैं। नोआखाली, पञ्जाब, सिन्ध, आदि में एक दूसरे के प्रति किए गए अत्याचारों को देखकर मानवता के रोंगटे खड़े हो जाते है, और वही पाषाण-युग का वन्य जीवन एक बार आँखो के सामने खिंच जाता है। जिना साहब ने साम्प्रदायिकता के आधार पर अपना पाकिस्तान अलग बना लिया

है और उसके कारण राजनीतिक परिस्थिति बड़ी भीषण हो गई है। परन्तु हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य अधिकतर विदेशी शासक की प्रेरणा और प्रोत्साहन से फैला है, जिससे जनता का जीवन ही नहीं अशांतिमय होगया, वरन् बापूको भी प्राणोंकी आहुति देनी पड़ी। प्रेमचन्द ने हिन्दू और मुसलमान दोनों के पाखण्डों की कबीर की भाँति कड़ी आलोचना की है और अन्त में दोनों को अच्छाइयाँ अपनाने की सलाह दी है। उनका विचार है कि दोनों कौमें सदियों से घुल-मिलकर एक हो गई हैं, उनकी संस्कृति भिन्न है, पर उनका पारस्परिक सम्पर्क अधिक हो गया है। दोनों को अपने भेद-भाव भुला देने चाहिए। हिंसा परमो धर्मः, मन्त्र, शान्ति, क्षमा आदि कहानियों में इसी हिन्दू-मुसलिम एकता की समस्या को चित्रित किया है। वास्तव में प्रेमचन्द दोनों धर्मों से पूर्ण सहानुभूति रखते थे, इसलिए दोनों की एकता चाहते थे।

नवाँ अध्याय

प्रेमचन्द की कहानियों की भाषा और शैली

प्रेमचन्द की साहित्यिक कृति की इतनी व्यापक लोक-प्रियता होने के कारणों में सबसे प्रधान कारण एक सरल धारा-वाहिक और सजीव भाषा-शैली का व्यवहार था जिसके सर्जन में उन्होंने अपनी स्वच्छन्द उद्भावना शक्ति और मौलिकता का परिचय दिया। जिस प्रकार आधुनिक हिन्दी-साहित्य-भण्डार में अपने उपन्यासों और कहानियों के विकसित स्वरूप द्वारा उन्होंने उस अङ्ग की वृद्धि की, उसी प्रकार आधुनिक हिन्दी-गद्य-शैली के निर्माताओं में उनका एक बहुत महत्वपूर्ण स्थान है जिसके लिए हिन्दी जगत् उनका चिरऋणी रहेगा।

जिस समय प्रेमचन्द जी ने हिन्दी में लिखना प्रारम्भ किया, उस समय तक हिन्दी-गद्य-शैली का रूप बहुत ही परिमार्जित और विकसित हो चुका था। निबन्ध, आलोचना, इतिहास, कहानी और उपन्यास आदि विभिन्न अङ्गों के पूर्ति के लिए अनेक लेखक बड़ी तत्परता से काम कर रहे थे। यह सबइतना होते हुए भी भाषा और शैली में अभी तक शिथिलता थी। एक ओर तो उसमें संस्कृत के तत्सम शब्दों का बाहुल्य था, दूसरी ओर फारसी के शब्दों का अत्यधिक मिश्रण था, जिसके कारण उसका स्वरूप अनिश्चित सा

था। उसमें एक ओर उस स्वाभाविकता और ग्राहिका शक्ति की आवश्यकता थी जिससे वह सभी वर्गों के अधिक से अधिक पाठकों को अपनी ओर आकृष्ट कर सके। दूसरी ओर उसे उस माँज और प्रवाह की आवश्यकता थी जिससे गङ्गा की धारा के समान आवश्यकतानुसार अपने स्वरूप को बदलते हुए सूक्ष्म से सूक्ष्म मनोभावों को व्यक्त करने में सफल हो सके। प्रेमचन्द ने अपनी प्रतिभा के बल से इन दोनो आवश्यकताओं की पूर्ति की और हिन्दी भाषा को इतना स्वाभाविक और सरल बना दिया कि वह राष्ट्र-भाषा के पदपर आसीन होने का दावा करने लगी।

परन्तु जैसा पहले कहा जा चुका है, पहले आरंभ में प्रेमचन्द जी कहानी और उपन्यास उर्दू मे लिखते थे और कुछ वर्ष उपरान्त कुछ सज्जनो की प्रेरणा से उन्होंने हिन्दी में लिखने का प्रयत्न किया। इसका परिणाम यह हुआ कि वही उर्दू की मुहावरेदार शैली और भाषा की सफाई, जिसको बहुत पहले ही वे पा चुके थे, हिन्दी में भी लेकर आये और हिन्दी-गद्य-शैली को उसने बहुत ही प्रभावित किया। परन्तु हिन्दी-शब्दो और भावो के प्रयोग मे इस आरम्भिक भाषा का प्रवाह कुछ उखड़ा और शिथिल रहा जिसका होना स्वाभाविक था। इतना ही नहीं उर्दू के तत्सम शब्दो, भावो और मुहावरों की झड़ी का, जो उस समय बराबर उनकी भाषा में गूँज रही थी, ये परिष्कार न कर पाए। इनकी किसी भी आरम्भिक कहानीको देखने से यह बात सिद्ध हो सकती है, जैसे:—

"फाल्गुन का महीना था। अबीर और गुलाल से जमीन लाल हो रही थी। कामदेव का प्रभाव लोगों को भड़का रहा था। रबी ने खेतों में सुनहरा फर्श बिछा रक्खा था और खलिहानों ने सुनहले महल उठा दिये गये थे। सन्तोष इस सुनहले फर्श पर इठलाता फिरता था, और निश्चिन्तता इस सुनहले महल पर तानें अलाप रही थी।"

सुनहला फर्श बिछाना, सुनहले महल उठाना, इठलाते फिरना, सुनहले महल मे तानें अलापना, आदि उर्दू के मुहावरों की झड़ी लग गई है। दो वाक्यों के अन्दर चार स्थानों पर सुनहला शब्द प्रयुक्त हुआ है, जिससे पता चलता है कि भाषा और शैली में अभी कला-संयमिता नहीं आई है। साथ ही साथ अशुद्ध मुहावरों का भी प्रयोग होता था, जैसे कामदेव का प्रभाव लोगों को भड़का रहा था। इसके अतिरिक्त व्याकरण सम्बन्धी भी त्रुटियाँ उस आरम्भिक रचना में दिखाई पड़ती हैं जैसे—'वह उसे समझाते', 'मै जवाब देते है', 'चोकीदार और लौंड़ियाँ सब सिर नीचे किए दुर्ग के स्वामी के सामने उपस्थित थे'। कहीं कहीं अशुद्ध शब्दों का भी प्रयोग हुआ है जैसे—रक्षणता, निरङ्ग, झैक, नैत, इत्यादि।

उपर्युक्त उद्धरण से यह स्पष्ट है कि प्रेमचन्द इस समय अपनी उर्दू की भाव व्यंजना को हिन्दी का चोला पहनाने का उद्दाम वेग से प्रयत्न कर रहे थे। पात्रों के कथोपकथन तथा वर्णन में जब कभी उर्दू-शब्दावली के दिखाने का अवसर आता

था तो प्रेमचन्द इस अवसर पर अपना सारा उर्दू भण्डार का खोल देते थे। 'अमावस्या की रात्रि' कहानी में एक हकीम जी का विज्ञापन देखिए।

'नाजरीन आप जानते हैं मैं कौन हूँ? आपका जर्द चेहरा तने लागर, आपका जरा सी मेहनत में बेदम हो जाना, आपका लज्जाते दुनियाँ से महरूम रहना, आपकी खाना तरीकी—यह सब इस सवाल का नफी में जवाब देते हैं। सुनिए मैं कौन हूँ। मैं वह शख्स हूं, जिसने इमराज इन्सानी को पर्दे—दुनियाँ से गायब कर देने का बीड़ा उठाया है, जिसने इश्तिहारबाज, जौ फरोश, गन्दुमनुमा बने हुए हकीमों को वेख और बुन से खोदकर दुनियाँ को पाक कर देने का अज्म बिलजज्म कर लिया है।" उपर्युक्त कहानियों मे विज्ञापन दिखाने की उतनी आवश्यकता लेखक को नहीं है, जितनी अपने उर्दू के पाण्डित्य दिखाने की।

परन्तु भाषा और भावों की उन त्रुटियो का प्रेमचन्द ने बहुत शीघ्र परिहार और परिष्कार किया, और कुछ ही काल में उनकी शैली को वह बल और सामंजस्य मिला जो किसी भी उच्च कलाकार के लिए आवश्यक है। उसमें उर्दू-शब्दो का प्रयोग आवश्यकतानुसार बना रहा परन्तु अधिकार ऐसे ही शब्दों को प्रेमचन्द ने अपनाया जो आम-फहम और मामूली बोल चाल की भापा में प्रयुक्त होते थे। मुहावरो का भी प्रयोग हुआ, पर भद्दा और असंगत नहीं। परिणामतया हिन्दी और उर्दू की शैली में

घुली-मिली एक सबल हिन्दी शैली का निर्माण हुआ, जिसका स्वरूप कुछ इस ढंग का था:—

'मेरी कक्षा में सूर्य्यप्रकाश से ज्यादा ऊधमी कोई लड़का न था, बल्कि यों कहो कि अध्यापन-काल के दस वर्षों में मुझे ऐसी विषम प्रकृति के शिष्य से साबका न पड़ा था। कपट-क्रीड़ा में उसकी जान बसती थी। ऐसे-ऐसे षडयंत्र रचता, ऐसे-ऐसे फन्दे डालता, ऐसे बाँधनू बाधता कि देख कर आश्चर्य होता था।'

भाषा और शैली का यह परिमार्जन दिन-रात प्रौढ़ता को प्राप्त होता गया, और कुछ ही काल पश्चात् उनकी शैली में इतनी स्वाभाविकता, परिमार्जन और प्रवाह आया कि ठीक-ठीक जहाँ जैसी भाषा की आवश्यकता पड़ी उसी का उन्होंने प्रयोग किया। हिन्दू-मुसलमान, मजदूर, किसान, प्रोफेसर नर्तकी, वेश्या, और क्लर्क—जिस श्रेणी का जो भी पात्र हो उसके मुख से वैसी ही भाषा का निकलवाना, जैसा प्रसंग हो, वैसा ही ठीक कहलाने की कला प्रेमचन्द जी की लेखनी में जादू की तरह आ गई थी। एक किसान की स्त्री के मुंह से सुनिए:—

१—'बुलाकी—हाँ और क्या. यही तो नारी का धरम है। अपना भाग सराहो कि मुझ जैसी सीधी औरत पा ली, जिस बल चाहते हो बिठाते हो। ऐसी मुँह जोर होती तो एक दिन निर्बाह न होता। (सुजान भगत)

२—'एक अनपढ़ ग्रामीण स्त्री के पत्र का स्वरूप देखिए:— स्वस्ति श्री सर्व उपमा जोग, सो तुम जायके बम्बई में बैठि रहियो

कान में तेज़ डारिकै। हमका रोज़ सपना देखात है, डरन के मारे नीद नाहीं आवत है।' (मोटेराम की डायरी)

३—एक डाक्टर, जो हिन्दी नहीं जानते थे, एक ग्रामीण से बात करते समय कहते हैं:—वहाँ पुरानी दवाई रखा रहता है, गरीब लोग आता है, दवाई ले जाता है, जिसको जीना होता है, जीता है जिसको मरना होता है, मरता है। हमसे कुछ मतलब नही, हम तुमको जो दवा देगा सच्चा दवा देगा।—(मंत्र)

यह तो हुआ विभिन्न वर्ग के लोगों की बातचीत का उचित स्वरूप। उसी प्रकार विभिन्न अवसरो और स्थलों पर भी अपनी भाषा और शैली की धारा आवश्यकतानुसार मोड़ने में प्रेमचन्द बहुत ही पटु हैं। किसी भी कहानी से इसके प्रर्याप्त उदाहरण मिल सकते है।

मुहावरों का प्रयोग—हिन्दी के लेखक मुहावरों का, खास कर बोलचाल के मुहावरो का बहुत कम प्रयोग करते हैं। इससे भाषा मे कृत्रिमता आ जाती है। प्रेमचन्द उर्दू के मुहावरेदानी से पूर्ण परिचित थे और उसमें प्रवीण भी हो गए थे, अतः वही मुहावरेदार शैली आप हिन्दी में लेकर आए। मुहावरों का इतना प्रचुर और उचित प्रयोग शायद ही किसी लेखक मे पाया जाता हो। यदि इनके उपन्यासो और कहानियो के केवल मुहावरों को ही संकलित कर उस पर लिखा जाय, तो एक छोटी-सी पुस्तक तैयार हो जायगी। यहाँ पर अति संक्षेप मे उसका वर्णन होगा।

आरम्भिक कहानियों में तो, फारसी और उर्दू के मुहावरों का ही आधिक्य था, जिनमें से कुछ का प्रयोग हिन्दी पाठकों को शायद ही समझ में आता, जैसे 'मुक्तिधन' नामक कहानी में फारसी मुहावरे का प्रयोग, 'सलामे रोस्ताई, बेगरजनेस्त' है और वहीं पर कोष्ठ में उसका अर्थ भी दिया गया है (किसान बिना मतलब सलाम नहीं करता)। बज्रपात आदि कहानियों में तो फारसी के कुछ शेर भी दे दिए गए हैं, जो हिन्दी पाठकों के लिए अबोध्य हैं। जैसे 'करो न माद की दीगर व तेजे नाज कुशी'। बाद की कहानियों में प्रेमचन्द ने इस दोष का परिहार किया। परन्तु उर्दू के मुहावरे तो इनकी सभी कहानियों में मिलते हैं। कहीं-कहीं कुछ कम अप्रचलित मुहावरों का भी प्रयोग हुआ है। जैसे 'आहुति' में 'न खुदा मिला न विसाले सनम' की जगह पर 'न माया मिला न राम' लिख कर काम चला सकते थे। परन्तु अधिकतर नित्यप्रति के व्यवहार मे आनेवाले उर्दू-मुहावरों का ही प्रयोग हुआ है, जो पाठकों को खटकता नहीं।

उर्दू-मुहावरों के अतिरिक्त हिन्दी-लोकोक्तियों का भी प्रेमचंद ने आवश्यकतानुसार प्रयोग किया। प्रत्येक समाज और देश की बोलियों मे जिस प्रकार अन्तर रहता है, उसी प्रकार उसकी उक्तियाँ और मुहावरे भी अपने ढंग के अलग ही होते हैं। गाँव-वालों की बोली मे दूसरे मुहावरे चलते है, व्यापारियों की बोली में दूसरे, अङ्गरेजी पढ़े-लिखे लोगों में अङ्गरेजी के मुहावरों के प्रयोग होते है। प्रत्येक समाज की विशेष उक्तियों का प्रेमचन्द

को ज्ञान था, और उसका अपनी कहानियों में उस समाज के पात्रों के कथनोपकथन मे प्रयोग किया है। इसके अतिरक्त इन सब के मेल से बनी हुई, जिस सजीव और व्यावहारिक भाषा का प्रयोग आजकल समाज में हो रहा है, उसको प्रेमचन्द ने अपनाया। शताब्दियों के परस्पर रहन-सहन, भाषा और भावों के आदान-प्रदान से आज हिन्दी, उर्दू और अङ्गरेजी सभी भाषाओं की उक्तियाँ आपस मे घुल-मिल गई हैं, जिसका निरन्तर प्रयोग हो रहा है। प्रेमचन्द ने उसी मिश्रित शैली का प्रयोग किया। दो एक उदाहरणो को लीजिए.—

१—'रामेन्द्र, इस विषय में शिक्षा पर मेरा विश्वास नहीं। शिक्षा ऐसी कितनी ही बातो को मानती है, जो रीति, नीति और परम्परा की दृष्टि से त्याज्य है। अगर पाँव फिसल जाय तो हम उसे काट कर फेंक नहीं देते, पर मैं इस एनालाजी के सामने सिर झुकाने को तैयार नहीं।' ('दो कब्र')

२—'नईम-तो यह मेरी समझ का फेर, मेरे अनुसन्धान का दोष, मानव प्रकृति के एक अटल नियम का एक उज्वल उदाहरण होगा। मै कोई सर्वज्ञ तो हूँ नहीं। मेरी नीयत पर आँच न आने पाएगी। आप इसके व्यवहारिक कोण पर न जाइये, केवल इनके नैतिक कोण पर ही निगाह रखिए।

आज दिन हिन्दी, उर्दू और अंग्रेजी तीनों प्रमुख भाषाओं के शब्दों और मुहावरो का प्रयोग एक दूसरे कर रहे हैं जिनका प्रेमचन्द ने अपनाया।

मुहावरों पर अधिक कहा जा चुका। मुहावरों के प्रयोग के अतिरिक्त प्रेमचन्द की गद्य-शैली में व्यंग्य और चुटकियों की मात्रा भी अधिक रहती है जिससे शैली बड़ी आकर्षक हो जाती है। जैसेः—

इंजिनियरों का ठेकेदारों से कुछ वैसा ही सम्बन्ध है, जैसा मधुमक्खियों का फूलों से। यह मधुरस कमीशन कहलाता है। कमीशन और रिश्वत में बड़ा अन्तर है। रिश्वत, लोक और परलोक दोनों का सर्वनाश कर देती है, उसमें भय है, चोरी है, बदनामी है, परन्तु कमीशन एक मनोहर वाटिका है, जहाँ न मनुष्य का डर, न परमात्मा का भय।'

कहीं-कहीं इन व्यंग्यो और परिहासों का प्रयोग शैली को संकेतात्मक बना देता है, जहाँ भाषा और भावों का पूर्ण नियंत्रण है, हाँ यह शैली तीर की तरह चुभती मालूम होती है। इसके उदाहरण के लिए बाद की कहानियाँ ली जा सकती हैं।

जहाँ कहीं इन्होंने काव्यमयी शैली का अनुसरण किया है, वहाँ इनकी भाषा हमारे गद्यकाव्य के गौरव की वस्तु बन गई है। जैसेः—

१—'आह! एक युग बीत गया, शोक और नैराश्य से उठती जवानी को कुचल दिया। न आँखों में ज्योति रही, न पैरों में शक्ति। जीवन क्या था एक दुखदाई स्वप्न था। उस सघन अंधकार में उसे कुछ न सूझता था। बस जीवन का आधार एक अभिलाषा थी, एक सुखद स्वप्न, जो न जाने उसने जीवन में कब देखा था। वही नदी का किनारा, वही वृक्षों का कुञ्ज, वही चन्दा का छोटा सा घर'। (कामना तरु)

२—उसी समय सुभद्रा पहुँची, और वरामदे में आकर एक खंभे की आड़ में इस भाँति खड़ी हो गई, कि केशव का मुँह उसके सामने था। आँखों में वह दृश्य खिच गया जब आज से बीस साल पहले उसने इसी भाँति केशव को मंडप में बैठे हुए आड़ से देखा था। तब उसका हृदय कितना पुलकित हो रहा था। अंतस्तल में गुदगुदी सी हो रही थी, मानों जीवन प्रभात का उदय हो रहा हो। जीवन मधुर संगीत की भाँति सुखद था, भविष्य उषास्वप्न की भाँति सुन्दर।' ('सुहाग का शव')

भावुकता से पूर्ण ऐसी काव्यशैली इनकी कहानियों में भरी पड़ी है। संक्षेप में यह कहना ठीक होगा कि जिस अवसर पर जिस तरह की भाषा का प्रयोग हृदय पर सीधा और गहरा प्रभाव कर सकता है, वैसी ही भाषा का प्रयोग प्रेमचन्द ने किया है।

इसी सजीव धारावाहिक और व्यवहारिक भाषा को प्रेमचन्द राष्ट्रभाषा के पद पर आसीन करना चाहते थे, भारतीय नेताओं, हिन्दुस्तानी एकेडमी, प्रयाग तथा अन्य माननीय संस्थाओं द्वारा जिसका प्रयोग हो रहा है। इसे आप हिन्दी कहिए या हिन्दुस्तानी, बात एक ही होगी। आज दिन हिन्दी, उर्दू और हिन्दुस्तानी, का प्रश्न कितना विवादग्रस्त और महत्वपूर्ण हो गया है, यह कहने की आवश्यकता नहीं। इस प्रश्न की विस्तृत व्याख्या करने का अवसर यहाँ नहीं है। संक्षेप में इतना ही कहा जा सकता है कि जिस प्रकार अपनी कहानियों और उपन्यासों में प्रेमचन्द ने समाज का स्पष्ट चित्र खींचकर भारत को एक स्वतन्त्र राष्ट्र में परिणत करने की अभिलाषा

की उसी प्रकार भारत जैसे विशाल देश में, जहाँ अनेक भाषाओं का प्रचलन है एक व्यवहारिक राष्ट्रभाषा का निर्माण किया जो भारत के सभी वर्गों द्वारा प्रयुक्त हो। चाहे विचारों की संकीर्णता के कारण संस्कृत और हिन्दी के पंडित संस्कृत के प्रचुर शब्दों से पूर्ण शुद्ध हिन्दी को लिए हुए एक कोने में बैठे और रहें उसी प्रकार उर्दू के मौलवी और मुल्ला फारसी और अरबी के शब्दों को ठूँस कर एक भाषा स्थिर रखने की व्यर्थ रट लगाएँ, पर आज दिन व्यवहार में जनता उर्दू और हिन्दी तक ही नही, अङ्गरेजी के भी शब्दों और मुहावरो का नित्य प्रयोग कर रही है। इन तीनों संस्कृतियो का इतना मिश्रण हो गया है कि इनके मेल से बनी हुई एक व्यावहारिक भाषा का भी प्रयोग आवश्यकता हो गया है। किसी उन्नत राष्ट्र की भाषा मे इतनी ग्राहिका शक्ति होनी चाहिए कि वह दूसरी भाषाओं के शब्दों और मुहावरों को अपनाकर अपने में पचा सके। उसकी ग्राहिका—शक्ति की वृद्धि उसकी दुर्बलता नहीं वरन् सवलता का प्रमाण है। इसलिए हिन्दी या उर्दू के विद्वानों का यह कथन कि इस मिश्रित भाषा के व्यवहार से दोनों भाषाओं के मौलिक और शुद्ध स्वरूप का विनाश हो जायगा सर्वथा असंगत है।

यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासो और कहानियों में जिस भाषा का प्रयोग किया, वही राष्ट्र भाषा होने के योग्य है, क्यो कि उसका स्वरूप व्यापक और सभी वर्गों द्वारा स्वीकृत है। उसी का आजीवन उन्होने प्रयोग किया, और उसी के पक्ष मे लड़ते रहे। इसी बात को मद्रास मे होने वाले हिन्दी प्रचार-सभा के चौथे वार्षिकोत्सव पर उन्होने कहा

था "इसे हिंदी कहिए, हिन्दुस्तानी कहिए, उर्दू कहिए—चीज एक है। नाम से हमारी कोई बहस नहीं। जीवित देश की तरह भाषा बराबर बनती रहती है। शुद्ध हिन्दी तो निरर्थक शब्द है। भारत शुद्ध हिन्दू होता तो उसकी भाषा भी शुद्ध हिन्दी होती। यहाँ तो हिन्दू, मुसलमान, इसाई, पारसी, अफगानी सभी जातियाँ मौजूद हैं। हमारी भाषा व्यापक रहेगी। भाषा-सुन्दरी को कोठरी में बन्द करके आप उसका सतीत्व तो बचा सकते है, लेकिन स्वास्थ का मूल्य देकर। उसकी आत्मा स्वयं इतनी बलवान् बनाइए कि वह अपने सतीत्व और स्वास्थ्य दोनों की रक्षा कर सके। बेशक हमे ऐसे ग्रामीण शब्दो को दूर रखना होगा, जो किसी इलाके में बोले जाते है। हमारा आदर्श यह होना चाहिए कि हमारी भाषा अधिक से अधिक आदमी समझ सके, और सभी का कर्त्तव्य है कि हम राष्ट्र-भाषा को उसी तरह सर्वाङ्ग-पूर्ण बनाए, जैसे अन्य राष्ट्रों की सबल भाषाएँ हैं। हमें राष्ट्र-भाषा का कोष बढ़ाते रहना चाहिए। वे संस्कृत, अरबी और फ़ारसी के शब्द, जिन्हें देखकर आज हम भयभीत हो रहे हैं, जब अभ्यास में आ जायँगे तो उनका हौवापन जाता रहेगा। भाषा-विस्तार की यह क्रिया धीरे धीरे ही होगी। इसके साथ हमें विभिन्न प्रांतीय भाषाओं के से ऐसे विद्वानों का एक बोर्ड बनाना पड़ेगा, जो राष्ट्र-भाषा की जरूरत के कायल हैं। उस बोर्ड में उर्दू, हिन्दी, बङ्गला, मराठी, तामिल आदि सभी भाषाओ के प्रतिनिधि रखें जाँय, और इस क्रिया को सुव्यवस्थित करने और उसकी गति को तेज करने का काम उन्हें सौपा जाय।"

प्रेमचन्द के इस कथन में कितनी सत्यता है यह कहने की आवश्यकता नहीं है। प्लेटफार्म पर के व्याख्यान दाताओं की

तरह उन्होंने केवल सिद्धान्तरूप में ही इसको नहीं कहा, वरन् अपनी साहित्यिक कृति में व्यवहार करके भी दिखाया। वे वास्तव में उस दिन का स्वप्न देख रहे थे जिस दिन हिन्दी पूर्णरूप से अङ्गरेजी के स्थान पर आसीन हो जायगी, जब हमारे यहाँ के विद्वान् एक राष्ट्र-भाषा में रचना करेंगे जब मद्रास और मैसूर, ढाका और पूना सभी स्थानों पर हिन्दी-राष्ट्र-भाषा के उत्तम ग्रन्थ निकलेंगे, उत्तम ग्रंथ प्रकाशित होंगे और संसार की भाषाओं और साहित्यों की सभा में हिंदी को भी एक विशिष्ट पद मिलेगा, जब हम मँगनी के सुन्दर कलेवर में नहीं अपने फटे वस्त्रो में ही सही, ससार के साहित्य मे प्रवेश करेंगे। यदि वे कुछ दिन और जीवित रहते तो शायद इस स्वप्न को अपनी आँखों के सामने पूर्ण कराने का प्रयत्नकरते। आज प्रत्येक भारतवासी का यही कर्तव्य होना चाहिए, कि यदि वे भारत को एक राष्ट्र कहे जाने की अभिलाषा रखते हों, तो प्रेमचन्द के बताए हुए मार्ग का अनुसरण करें और हिन्दी को ही राष्ट्रभापा के रूप में अपनाएँ। इसी में देश की मर्यादा और कल्याण है।

दसवाँ अध्याय

प्रेमचन्द की साहित्य-सेवा और उनका स्थान

प्रेमचन्द जी का अभ्युदय हिन्दी साहित्य के प्रांगण में उस प्रभातकाल में हुआ था, जब भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा हिन्दी का केवल नामकरण हुआ था, और वह नवजात शिशु की भाँति खेलता हुआ अपने पार्श्ववर्त्ती अन्य साहित्य-निधियों की ओर बढ़कर अपने को समृद्धिशाली बनाना चाहता था। वह इतना क्षीणकाय और दुर्बल था कि उसमें अपने पैरों खड़े होने और चलने की शक्ति न थी। इस दुर्बलता के अतिरिक्त वह परम दरिद्र भी था, परिणामतया उसके पास कोई आवरण न था जिससे वह अपनी दरिद्रता को ढँक सके। प्रेमचन्द ने ही उस नवजात शिशुसे हिंदी के गद्य साहित्य में बल और स्फूर्ति का संचार किया, जिससे वह उद्दाम वेग से चलने लगा। साथ ही उसको एक सुन्दर कलेवर भी प्रदान किया जिसको धारण करके वह अन्य उन्नत साहित्यों की सभा में एक विशिष्ट पद का अधिकारी होने लगा। यदि अलंकार का पर्दा हटा कर कहें, तो कहा जायगा कि प्रेमचन्द के पहले हिन्दी-गद्य-साहित्य में, विशेषतया कथा-साहित्य में न तो उन्नत भाव थे, न भाषा। हिंदी को प्रेमचन्द ने दोनों वस्तुएँ प्रदान कीं।

प्रेमचन्द के पहले का कथा-साहित्य इतना निर्जीव और उच्छृ-ङ्खल था कि उसकी गणना साहित्य-कोटि मे नहीं की जा सकती थी। उर्दू के पाठकों को अलिफ लैला, बागो बहार, तिलिस्मे

होशरुबा के अनदेखे और निम्न श्रेणी की वासनात्मक रुचि को तृप्त करने वाली कहानियों पर ही सन्तोष करना पड़ता था। उसी भाँति हिन्दी के पाठकों को सारंगा सदाबृज, चन्द्रकान्ता सन्तति के ही दूषित जल में डुबकी लगानी पड़ती थी। दोनों भाषाओं का कथा-साहित्य तिलस्माती तथा अनहोनी घटनाओं, भूत-प्रेत के गप्पों, प्रेमवियोग के आख्यानों और उपदेश-धर्म की कथाओं से भरा पड़ा था। इनका एकमात्र उद्देश्य मनोरञ्जन और पाठकों की कौतूहल-वृत्ति का तर्पण थी। यदि निष्पक्ष रूप से कहा जाय तो जीवन की व्याख्या के लिए, जो साहित्य की सर्वोत्तम परिभाषा है, कथा-साहित्य का द्वार बिलकुल बन्द था। यदि भारत के किसी साहित्य मे कहानी का कोई स्वरूप था तो बॅगला में था, जिसका हिन्दी में अनुकरण हो रहा था। हिन्दी-साहित्य को जीवन के पूर्ण रूप से सम्बद्ध करने का श्रेय प्रेमचन्द को है। इसके अतिरिक्त जिस कथा-साहित्य की उन्होंने सृष्टि की, उसका उद्देश्य केवल मनोरञ्जन, या भद्दी मानसिक वृत्तियों की तुष्टि ही न थी, वरन् उदात्त भावनाओं को जागरित करना भी था। 'जिस साहित्य से हमारी सुरुचि न जागे, हमें आध्यात्मिक और मानसिक तृप्ति न मिले, हम मे शक्ति और गति न पैदा हो, जो हम में सच्चा संकल्प और कठिनाइयों पर विजय करने की सच्ची दृढ़ता न उत्पन्न करे, वह साहित्य कहलाने का अधिकारी नहीं' इस सिद्धान्त को उन्होने अपना ध्येय बनाया और उसी के अनुसार अपने साहित्य का सर्जन किया।

आधुनिक हिन्दी-गद्य-साहित्य के वे सबसे मौलिक एक ऐसे लेखक थे जो पाश्चात्य सभ्यता और शिक्षा से प्रभावित होते हुए भी, उसकी धारा मे बहे नहीं वरन् अपनी भारतीय संस्कृति

और आदर्शों की रक्षा, साहित्य में समान स्वरूप से की। पाश्चात्य कलाकारों की तरह कला को कला के लिए न मान कर कला का सम्बन्ध उन्होंने जीवन से स्थापित किया। पाश्चात्य कलाकारों के यथार्थवाद को मानते हुए भी अपनी साहित्यिक कृति की समाप्ति भारतीय आदर्शात्मक ढग पर करके अपनी श्रेष्ठ मौलिकता का परिचय दिया। उनकी कला की दीवार सुधार के आदर्शों पर खड़ी है। अतएव भारतीयता के पुजारी होते हुए भी समाजगत और व्यक्ति-विशेष में प्रसिद्ध उन रूढ़िगों और कुरीतियो का खुल्लम-खुल्ला विरोध किया। भारत के अनेक उच्च शिक्षा प्राप्त अधिकारी पाश्चात्य देशों में वहती हुई धारा को अन्धाधुन्ध भारत में भी लागू करना चाहते थे। प्रेमचन्द ने भी प्राश्चात्य देशों की धाराओं, जैसे साम्यवाद, अनिवार्य शिक्षा, स्त्री-स्वतंत्रता आदि को व्यवहार में लाए जाने का आदेश दिया, परन्तु उसी प्रकार नहीं, जैसा पश्चिम में है, वरन् उसे भारत की परिस्थितियों और आदर्शों के अनुसार अपनाने का आदेश दिया। उनकी साहित्यिक कृति स्थल-स्थल पर यह संदेश देती है, कि पूर्व और पश्चिम दोनों के आदर्शों मे आकाश-पाताल का अन्तर है। पश्चिम भौतिकता, अधिकार और सांसारिक प्रतिष्ठा का पुजारी है, और पूर्व आध्यात्मिकता, सेवा और उपकार का। अतएव परतंत्र रहते हुए भी भारत अपने आदर्शों में पश्चिम से कहीं ऊँचा है। इसी त्याग, सेवा और उपकार को ध्यान मे रखकर उन्होने अपनी साहित्यिक कृति का निर्माण किया, इसे स्वयं अपने जीवन मे करके दिखाया और इसी का सन्देश जनता को दिया।

परन्तु सब से बड़ी विशेषता उन्होंने जो दिखाई वह यह थी कि उन्होने उच्च वर्ग के वैभव के लालों को छोड़कर गाँव की दीन

झोपड़ियों की ओर ध्यान दिया। उनके साथ श्रद्धा और सहानुभूति दिखा कर यह सिद्ध किया कि भारत की स्वतंत्रता ग्राम-सुधार पर ही निर्भर है। साहित्य का ग्राम्य-जीवन से इतना घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करने का सारा श्रेय प्रेमचन्द को ही है। गावों के साथ ही साथ समाज के मध्यम और उच्च वर्गों की बुराइयों को भी दिखला कर उनसे बचने का आदेश दिया, और इस प्रकार समस्त राष्ट्र में उस स्फूर्त्ति और चेतना का संचार किया, जिससे वह अपनी अँगड़ाई छोड़ कर स्वतंत्रता के पथ की ओर अग्रसर हो, जो उसका अन्तिम ध्येय है।

उनकी कृति को देखने से यह स्पष्ट पता चलता है कि एक उत्कृष्ट श्रेणी की साहित्यिक प्रतिभा रखने के साथ ही साथ, उनका हृदय भी बहुत ही उदार और विशाल था। एक संकीर्ण हृदयवाले साहित्यिक की भाँति उन्होंने किसी एक वर्ग या समाज की प्रशंसा या आलोचना नहीं की, वरन् हिन्दू, मुसलिम, इसाई पारसी और अन्य सभी धर्मों के गुण-दोषों का निष्पक्ष निराकरण करके राष्ट्रीय एकता का पाठ पढ़ाया। इस प्रकार कहानी और उपन्यास को केवल मनोरंजन का साधन न बना कर उसे समाज और राष्ट्र की महत्वपूर्ण समस्याओं को सुलझाने का साधन बना कर उसे एक साहित्यिक कृति के रूप में परिणत किया तथा उसे इतना उन्नतिशील बनाया कि वह साहित्य के अन्य अंगों, जैसे कविता, नाटक, आदि के समकक्ष बैठने का दावा कर सके।

कथा साहित्य को समृद्धशाली बनाने के अतिरिक्त प्रेमचन्द ने एक व्यावहारिक और सजीव शैली का भी निर्माण किया।

इसके पहले हिन्दी में स्वाभाविक और मजी हुई शैली का अभाव था। एक ओर तो पण्डित गोविन्द नारायण मिश्र और अम्बिकादत्त व्यास की कादम्बरी के ढंग की लम्बे-लम्बे समासों से युक्त संस्कृत-शैली थी, दूसरी तरफ राजा शिवप्रसाद की फारसी से भरी हुई शैली। उधर एक तीसरी शैली उर्दू की थी, जो अत्यन्त चुस्त और मुहावरे दार थी। प्रेमचन्द ने इन तीनों शैलियो का सामंजस्य करके एक धारावाहिक शैली का निर्माण किया, जिसमें उर्दू से मुहावरेदानी और चुस्तगी तथा हिन्दी से काव्यमय गंभीरता ली गई और अन्य भाषाओं के शब्दो और भावों को अपनाकर स्वतंत्र राष्ट्र के लिए एक स्वतंत्र भाषा तैयार की गई, उसका प्रयोग करके दिखाया गया और सभी को प्रयोग करने का आदेश दिया गया।

अपनी इन सेवाओं के कारण प्रेमचन्द का आधुनिक-हिन्दी-गद्य निर्माताओं में कितना उच्च स्थान है, यह पाठक स्वयं समझ सकते हैं। भारतेन्दु के बाद हिन्दी अपना मार्ग अधकार में टटोल रही थी, अपने पड़ोसियों से अप्राप्य खाद्य लेकर उदरपूर्ति कर रही थी। प्रेमचन्द ने उसे अपना घर दिखाया, जीवन से उसका सम्बन्ध स्थिर किया। हमारी भाषा को स्वाभाविकता दी, वह अपने बच्चो के मुँह से निकलने लगी। हिन्दी हिन्द की हुई। यही प्रेमचन्द की देन है। उनका स्थूल शरीर अदृश्य हो गया है, परन्तु उनका यह उज्ज्वल प्रतीक तब तक रहेगा, जब तक हिन्दी रहेगी और उसके बोलने वाले रहेंगे। उन्होने कहानी और उपन्यास को केवल मनोरंजन के लिए नहीं लिखा वरन् उनकी कला का ध्येय सामाजिक उत्थान तथा सुधार था। भारत की हजारों समस्याएँ जो आज विवाद का विषय बन गई हैं, जैसे हिन्दी, उर्दू,

हिन्दुस्तानी, पाकिस्तान, लीग, संघराष्ट्र—सब का उन्होंने बहुत ही विचार-पूर्वक अपने साहित्य में चित्रण किया और उसका यथा-सम्भव समाधान भी किया। ग्राम-सुधार की समस्या को ही जो आज हमारी सरकार की मुख्य योजना है, उन्होंने अपने साहित्य में प्रमुख स्थान देकर भविष्य के राजनीतिकों और साहित्यिकों को सचेत किया कि वे भारत के सुधार का सच्चा सोपान देखें। आज भारत के दासता की बेड़ियों से मुक्त हो जाने पर तो प्रेमचन्द का नाम स्वर्णाक्षरों में लिखा जाना चाहिए। भाषा और भाव दोनों के क्षेत्र में इस आदर्श कलाकार ने एक क्रान्ति उपस्थित की, जो भारतीय इतिहास में चिर स्मरणीय रहेगी।

है, मुझे लिखती है—"जब स्कूल के बालक रोटी मागते है तो उन्हे निराशा क्वचित ही मिलती है, या यो कहना चाहिए कि कभी नही मिलती।" मैं उसी महिला के पत्र से नीचे कुछ और अश देता हू .

"बीमारी की दशा मे बिना किसी पुरस्कार की आशा के पडोसियो की सेवा-सुश्रूषा करना मजदूरो मे बिलकुल साधारण बात है। इसी प्रकार छोटे बच्चो वाली कोई स्त्री काम पर जाती है तो पडोस की दूसरी स्त्री हमेशा उस स्त्री के बच्चो की निगरानी रखती है।

"मजदूरपेशा जातियो मे यदि वे एक-दूसरे की सहायता न करे तो वे जीवित भी नही रह सकते। मै ऐसे कुटुम्बो को जानती हू जो रुपये से, भोजन से, जलाने की लकडी से और बीमारी की दशा मे या मौत हो जाने पर छोटे बच्चो का पालन-पोषण कर-करके आपस मे एक-दूसरे की मदद करते है।

"'मेरे' और 'तेरे' का भेद धनिको की अपेक्षा गरीबो मे बहुत कम पाया जाता है। जूते, पोशाक, टोप आदि जिस किसी चीज की स्थान विशेष पर आवश्यकता पड जाती है, वही एक-दूसरे से बराबर उधार ले ली जाती है, घर-गृहस्थी की सभी प्रकार की चीजे भी इसी तरह ली जा सकती है।

"पिछले सर्दी के मौसम मे युनाइटेड रेडिकल क्लब के सदस्यो ने कुछ रुपया इक्ट्ठा किया था। बडे दिनो के बाद उस रुपये मे वे स्कूल जानेवाले बच्चो को शोरबा और रोटी मुफ्त मे बाटने लगे। धीरे-धीरे उनके पास अठारह सौ लडके आने लगे। रुपया बाहरवालो से मिला था, किन्तु सब काम क्लब के सदस्य ही करते थे। उनमे से कुछ जो काम नही करते थे, सुबह चार बजे शाक-भाजी को धोने और काटने के लिए आते, पाच स्त्रिया अपने घर के काम-काज से निबट कर नौ-दस बजे उसे पकाने को आती और थालिया धोने के लिए छह-सात बजे तक ठहरती। और भोजन के समय बाहर से डेढ बजे के बीच मे बीस से तीस मजदूर शोरबा परोसने मे मदद देने के लिए आते, और हरेक अपने भोजन के समयमे से जितना समय बचा पाता उतनी देर वहा ठहरता। यह काम दो महीने तक चला। किसी को एक पैसा भी नही दिया गया।"

मेरी महिला दोस्त ने कुछ व्यक्तिगत उदाहरण भी दिये है, उनमे से ये विशेष उल्लेखनीय है

"एनी डब्ल्यू को उसकी माता ने विलमोट स्ट्रीट की एक वृद्धा के यहा रक्खा। जब उसकी माता मर गई, तो उस वृद्धा जो स्वय बहुत दरिद्र थी, उस बच्चे को बिना एक भी पैसा लिये अपने पास रक्खा। जब यह वृद्धा भी मर गई

कुछ और उदाहरण

श्री प्लिमसोल को साढे-सात शिलिग प्रति सप्ताह पर कुछ- अर्से तक गरीबो के बीच मे रहने के बाद यह स्वीकार करना पडा कि अपने जीवन के प्रारम्भ मे उसने जिन दया की भावनाओ को अपने हृदय मे स्थान दिया, वही उस समय हार्दिक आदर और प्रशसा के रूप मे बदल गई, जब उसने देखा कि दरिद्रो के पारस्परिक सम्बन्ध किस प्रकार पारस्परिक सहयोग और सहायता के के भावो से परिपूरित है और यह पारस्परिक सहयोग कितने सीधे-सादे ढग से कियाजाता है। अनेक वर्षो के अनुभव के बाद प्लिमसोल इस नतीजे पर पहुचा था कि "जैसा इन आदमियो का व्यवहार था वैसा ही अधिकाश श्रमिक जातियो का भी व्यवहार होना चाहिए।" दरिद्र-से-दरिद्र कुटुम्बो द्वारा भी अनाथ बच्चो के पालन-पोषण करने की प्रथा इतनी व्यापक है कि उसे एक आम नियम ही कहना चाहिए। वारेनवेल और लण्डहिल के खानो मे दो विस्फोट हुए। जाच-कमेटियो का निर्णय है कि एक तिहाई मजदूर मारे गए। इन मजदूरो के परिवारो का भरण-पोषण इनमे शेष खनिको ने किया। श्री प्लिमसोल कहते है, "क्या आपने सोचा है, यह है क्या ? धनी, यहा तक कि आराम से रहनेवाले लोग भी ऐसा करते हैं, इसमे सन्देह नही। किन्तु इसमे और उसमे कितना अन्तर है, जरा इस पर तो विचार कीजिये।" एक आदमी है, जो प्रति सप्ताह सोलह शिलिग कमाता है। उसे अपनी बीवी और पाच-छ बच्चो का पेट पालना होता है। यह आदमी अपने साथी की विधवा की सहायता के लिए एक शिलिग देता है अथवा किसी मजदूर भाई को अपने रिश्तेदार के अन्त्येष्टि सस्कार के अतिरिक्त खर्च के लिए छ पेंस देता है, तो जरा सोचिए कि इसका क्या अर्थ है ?[1] किन्तु दुनिया मे सभी जगह के मजदूरो मे इस प्रकार सहायता देना

सहयोग का आम नियम

जाता ताकि वे टोकरी और फूल खरीद सकें। ये कर्ज ऐसी-ऐसी लडकियो को दिये जाते थे, जिनके पास छ पेंस जितनी रकम भी न होती थी। फिर भी इन लडकियों को कोई अन्य दरिद्र जामिन मिलने में कठिनाई न होती थी। लार्ड शैफ्ट्सबरी ने लिखा है, "जिन हलचलो से मेरा सम्बन्ध रहा है, उन सबमें मै अपनी इस हलचल को सबसे अधिक सफल मानता हू। यह सन् १८७२ में शुरू की गई थी, आठ सौ से हजार तक कर्ज दिये गए, किन्तु इस सारे अर्से में पचास लायर भी नहीं डूबे। जो रकम डूबी, हालात को देखते हुए बहुत थोडी थी और धोखादेही नही, बीमारी अथवा मौत ही उसका कारण था।" (लार्ड शेफ्ट्सबरी के श्री एडविनहोडर लिखित जीवनचरित्र से)

[1] श्री प्लिमसोल ने लिखा है, "मैं धनिको की निन्दा नही करना

आम रिवाज है। कुटुम्ब मे मृत्यु हो जाने के अलावा बिल्कुल साधारण परिस्थितियो में भी सहायता दी जाती है और काम मे मदद देना तो उनके जीवन में बहुत ही साधारण से साधारण बात है।

धनिक वर्ग मे भी पारस्परिक सहयोग की प्रथा का अस्तित्व न हो, सो बात नही है। अवश्य ही जब धनी मालिक अपने नौकरो के साथ कडाई का व्यवहार करता है और ऐसा बहुधा होता है तो मानव-स्वभाव से निराशा होने लगती है।

धनिको की निष्ठुरता

सन् १८९४ की यार्कशायर की हडताल के जमाने मे कोयले की खानो के मालिको ने कुछ वृद्ध खनिको पर इसलिए मुकदमा चलाया था कि उन्होने परित्यक्त गड्ढो से कुछ कोयला उठा लिया था। इस घटना पर जो रोष प्रकट किया गया, उसे बहुत से लोग अब भी न भूले होगे। और यदि हम सघर्ष और समाज—युद्ध कालिक भीषणताओं का जिक्र एक ओर छोड भी दे—फ्रास के जनतन्त्र के पतन के बाद ऐसा ही हुआ था कि हजारो मजदूर कैदियो को तलवार के घाट उतार दिया गया—तो भी सन् १८४० मे हुई श्रम-सम्बन्धी जाच मे जो बाते प्रकट हुई अथवा लार्ड शेफ्ट्सबरी ने कारखानो मे होनेवाली मनुष्यो की भयकर बर्बादी के बारे मे जो कुछ लिखा[1] उसको पढकर कौन ऐसा होगा जिस पर यह स्पष्ट असर नही पडेगा कि जब उसके स्वार्थ पर कुठाराघात होने का प्रश्न आता है तो मनुष्य कितनी नीचता पर उतारू हो सकता है। किन्तु यह भी कहना होगा कि इस प्रकार

चाहता, किन्तु मेरा खयाल है यह शका उठाई जा सकती है कि क्या इन गुणो का उनमें इतनी पूरी तरह विकास हुआ है? कारण कि अपने दरिद्र रिश्तेदारो की उचित अथवा अनुचित आवश्यकताओ से अपरिचित न होने पर भी धनवानो में उन गुणो का इस प्रकार बराबर व्यवहार नही होता। जो धनवान है, उनमें से बहुतो की मनुष्यता का धन ने गला घोट दिया है और कहना चाहिए कि उनकी सहानुभूति की भावना जितनी सकुचित नहीं होती, उतनी कुन्द हो जाती है। अपनी श्रेणी के लोगो के कष्टो के लिए वे अपनी सहानुभूति सुरक्षित रखते हैं या अपने से बडो की भी मदद करते है। वे नीचे की ओर क्वचित ही झुकते हैं। साहस के एक काम की तारीफ करना उन्हे अधिक भाता है, परन्तु गरीबो के कष्टमय जीवन की दिन-रात की बहादुरी और हृदय की कोमलता की कदर करना उन्हे नही आता।

[1] इन कारखानो में काम करने के लिए बच्चे या तो मजदूरो के घरो से जाते थे या देश के सभी हिस्सो मे से खरीदे जाते थे। इन बच्चो को कारखानो मे गुलामो की तरह बेचा जा सकता था।

के व्यवहार के लिए सारा दोष मानव-स्वभाव की दुष्टता पर ही नही मढना चाहिए। क्या कुछ दिन पहले तक विज्ञान-वादियो और पादरियो के एक खास हिस्से ने भी दरिद्र वर्ग के प्रति अविश्वास, अपमान और घृणा की शिक्षा नही दी है ? क्या विज्ञान ने यह नही सिखाया है कि गुलामी की प्रथा उठा देने के बाद अब यदि कोई दरिद्र है तो इसका कारण स्वय उसके दुर्गुण ही है ? और पादरियो मे से कितने ऐसे है जो बाल हत्यारो को दोष देने का साहस रखते है ? हा, उनमे ऐसे लोगो की सख्या तो बहुत है जो गरीबो के कष्टो और यहा तक कि हबशियो की गुलामी को भी दैवी योजना बताते है। गिरजाघरो की परम्परा के विरुद्ध जो विद्रोह हुआ, क्या वह गिरजाघरो के हाथो गरीबो के साथ होनेवाले कठोर व्यवहार का व्यापक विरोध न था ?

समाज के इस प्रकार के आध्यात्मिक नेता होने के कारण धनिकवर्ग की भावनाए, जैसा कि श्री प्लिमसोल ने कहा है, अनिवार्यत कुण्ठित होने की अपेक्षा सीमाबद्ध अधिक हो गई। धनी लोग अपने रहन-सहन के ढग के कारण गरीबो से अलग हो गए हैं। वे उनकी खूबियो को नही पहचानते, उनकी दैनिक अच्छाइयो को नही जानते और इसलिए वे गरीबो की ओर क्वचित ही देखते है। किन्तु अपने आपस मे, कुटुम्ब और मित्रो के दायरे मे गरीबो की भाति धनी भी उसी पारस्परिक सहयोग का अनुसरण करते है। हा, इसमे धन-सग्रह करने की वासनाओ के परिणामो और धन-सग्रह हो जाने के बाद उसके परिणाम-स्वरूप होनेवाले व्यर्थ के खर्चों का तो हमे लिहाज रखना ही होगा। डा० इहेरिंग और एल डेर गुन ने बिल्कुल ठीक कहा है कि दोस्ताना फर्ज और सहायता के रूप मे जो रुपया एक हाथ से दूसरे हाथ मे जाता है यदि उसका तालिकायुक्त हिसाब इकट्ठा किया जा सके, तो कुल जोड दुनिया के व्यापार मे लगे हुए रुपये की अपेक्षा भी अधिक होगा। यदि इस रकम मे, आतिथ्य-सत्कार, छोटी-मोटी पारस्परिक सेवाओ, दूसरे लोगो के मामलो की व्यवस्था, भेट, दान आदि मे खर्च होने-वाली रकमे भी शामिल कर ली जाय, जैसा कि हमे करना चाहिए, तो हमे राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था मे ऐसे आदान-प्रदानो का जो महत्व है, उसका पता लग जायगा। उस दुनिया मे भी जहा व्यापारिक स्वार्थ का ही राज्य है, ये उद्गार प्रचलित है—"उस दुकान ने हामरे साथ कठोर व्यवहार किया।" इससे पता चलता है कि उसमे कठोर व्यवहार यानी कानूनी व्यवहार के मुकाबले मे मैत्रीपूर्ण व्यवहार का भी अस्तित्व है और यह तो हर व्यापारी जानता है कि दूसरी फर्मों के मैत्रीपूर्ण सहयोग से प्रति वर्ष कितनी फर्में दिवालिया बनने से बच जाती है।

भली प्रकार से जीवन-यापन करनेवालो, कार्यकर्ताओ और खासकर

पेशेवर व्यक्तियो के द्वारा सार्वजनिक हित का स्वेच्छापूर्वक जो काम होता है, उसके तथा दानादि के सम्बन्ध मे हरेक आदमी जानता है कि आधुनिक जीवन मे परोपकार की इन दोनो श्रेणियो का क्या स्थान है। यद्यपि ख्याति, राजनैतिक-शक्ति और सामाजिक विशिष्टता प्राप्त करने की इच्छा बहुधा उस प्रकार के परोपकारी कृत्य के असली स्वरूप को विगाड देती है, फिर भी इसमे कोई सन्देह नही है कि अधिकाश उदाहरणो मे उसी पारस्परिक सहयोग की भावना से प्रेरणा मिलती है। वहुत से मनुष्य धनवान बन जाने के वाद भी वाछित सन्तोष नही अनुभव करते। अर्थशास्त्री सम्पत्ति के वारे मे भले ही कहा करे कि वह तो उसी के पास जाती है जिसमे क्षमता होती है, किन्तु अनेक धनवान यह अनुभव करने लगते हे कि उनका खुद का पुरस्कार वहुत वढाकर आका जाता है। इस प्रकार मानवी एकता की भावना का असर होने लगता है और यद्यपि समाज का जीवन इस प्रकार निर्मित है कि उस भावना को कुचलने की हजारो चतुराई पूर्ण ढगो द्वारा कोशिश होती रहती है, फिर भी वह प्रवल हो ही जाती है। और तव वे अपनी धन-दौलत अथवा शक्तिया एक ऐसी योजना मे लगाकर उस मानवी आवश्यकता की पूर्ति के लिए क्षेत्र ढूढते है, जो उनकी राय मे सार्वजनिक हित की वृद्धि करनेवाली हो।

सहयोग की प्रेरणा

सक्षेप मे, न तो केन्द्रीभूत सरकार को कुचल डालने वाली शक्तिया और न पारस्परिक घृणा और निर्दया सघर्ष की शिक्षाए (जिनको विज्ञान का जामा पहनाकर उपकारी तत्त्ववेत्ताओ ने फैलाया है) मनुष्य की बुद्धि और हृदय मे बैठी हुई मानवी एकता की भावना को नष्ट कर सकी, कारण कि उस भावना का हमारे अब तक के सारे विकासकाल मे पालन-पोषण हुआ है। शुरू से लगाकर अब तक के विकास का जो परिणाम हुआ, उस पर उसी विकास का एक पहलू विजयी नही हो सकता था। और पारस्परिक सहयोग और समर्थन की आवश्यकता, जिसने अभी कुछ अर्से से कुटुम्ब के सकुचित दायरे अथवा गाँव के एक मुहल्ले या मजदूरो के गुप्त सघो मे आश्रय लिया हे, हमारे आधुनिक समाज मे भी पुन अपने अस्तित्व पर जोर देने लगी हे। जैसा कि हमेशा से होता चला आ रहा है, वह भावना भावी उन्नति की मुख्य सूत्रधार वनने का दावा कर रही है। पिछले दो अध्यायो मे जो वाते लिखी गई है उनपर ध्यानपूर्वक विचार करने पर हम अनिवार्यत इन्ही परिणामो पर पहुचते है।

एकता की भावना अमर है

: ९ :

उपसंहार

प्राणी-ससार और मानव-जाति के विकास मे पारस्परिक सहयोग का कितना महत्व है, इस विषय के प्रमाणो के साथ अब यदि हम उन शिक्षाओ पर विचार करे जो आधुनिक समाज के विश्लेषण से प्राप्त की जा सकती है, तो हम अपनी जाच का सार इस प्रकार निकाल सकते है।

प्राणी-ससार मे हम देख चुके है कि अधिकाश प्राणियो की किस्मे समुदाय बनाकर रहती है और इसी मे उन्हे जीवन-सघर्ष के लिए सर्वोत्तम हथियार प्राप्त होते है। अवश्य ही, यहा जीवन-सघर्ष का वही अर्थ होना चाहिए, जो डार्विन के सिद्धान्तो का व्यापक अर्थ है—अर्थात् जीवन-सघर्ष का अर्थ उस सघर्ष से नही है जो कि अपना अस्तित्व कायम रखने के लिए ही होता है, बल्कि उस सघर्ष से है जो प्रतिकूल प्राकृतिक परिस्थितियो के विरुद्ध होता है। प्राणियो की जिन किस्मो मे वैयक्तिक सघर्ष कम-से-कम हो गया है। और पारस्परिक सहयोग की प्रथा का अधिक-से-अधिक विकास हुआ है, निश्चत रूप से वे किस्मे सबसे अधिक बहुसख्यक और समृद्ध है और उनकी भावी उन्नति का दरवाज़ा खुला है। ऐसी दशा मे जो पारस्परिक सरक्षण मिलता है, दीर्घायु होने और अनुभव एकत्र करने की सम्भावना रहती है और सामाजिक आदतो मे और भी वृद्धि होती है उसके कारण प्राणियो की किस्मे बनती रहती हैं, उनका विस्तार और भावी क्रमिक विकास होता है। इसके विपरीत जो किस्मे मिलकर नही रहती, उनका ह्रास निश्चित है।

प्राणी-जगत में

इसके बाद जब हमने मानव-प्राणी का अध्ययन किया तो हमे पता चला कि पत्थर युग के शुरू मे भी मनुष्य खानदानो (वशो) और जातियो मे रहता था। इन खानदानो और जातियो मे निम्न प्राकृत अवस्था मे ही हम अनेक प्रकार की सामाजिक सस्थाओ का विकास देख चुके है। हम यह भी देख चुके है कि अत्यन्त प्राचीन काल के जातीय रिवाजो और प्रथाओ के द्वारा ही मानव-जाति को उन सस्थाओ का प्रारम्भिक ढाचा प्राप्त हुआ, जिसने आगे चलकर भावी उन्नति के प्रमुख पहलुओ का निर्माण किया। प्राकृत जातियो मे बर्बरकालिक-

मानव प्राणी में

ग्राम-समुदायो का जन्म हुआ और सामाजिक रीति-रिवाजो और संस्थाओ के एक नवीन तथा और भी व्यापक क्षेत्र का विकास हुआ। इन रीति-रिवाजो और संस्थाओ मे से अनेक इस समय भी हमारे बीच मे विद्यमान है। उनका विकास इन सिद्धान्तो के अनुसार हुआ था कि इस क्षेत्र-विशेष पर सामुदायिक अधिकार रहे और सब मिलकर उस क्षेत्र की रक्षा करे। उन पर ग्राम पचायतो तथा एक ही वश की विभिन्न शाखाओ के ग्राम-सघो की सत्ता थी। और जब नई आवश्यकताओ ने मनुष्यो को नवीन व्यवस्था का निर्माण करने को प्रेरित किया तो उन्होने नगरो के सगठन को जन्म दिया। यह सगठन प्रादेशिक संस्थाओ (ग्राम-समुदायो) के दुहरे जाल का द्योतक था, जिसके साथ भ्रातृ-सघ सबन्धित थे। किसी कला-विशेष या दस्तकारी के सुचारु रूप से करने अथवा पारस्परिक समर्थन और आत्म-रक्षा के लिए इन भ्रातृ-सघो का जन्म हुआ।

अन्त मे, पिछले दो अध्यायो मे यह बताया गया है कि यद्यपि रोम-साम्राज्य के नमूने पर बननेवाले राज्यो ने पारस्परिक सहयोग की सभी मध्यकालिक संस्थाओ को पूर्णत बलपूर्वक नष्ट कर दिया था, फिर भी सभ्यता का यह नवीन पहलू नष्ट न हो सका। असगठित जन-समूहो के आधार पर निर्मित और उनको एक सूत्र मे रखने का अकेले अपने ही ऊपर भार ले लेनेवाली राज्य-संस्थाए सभ्यता के उस पहलू की उद्देश्य-पूर्ति न कर सकी। अन्त मे पारस्परिक सहयोग की प्रवृत्ति ने राज्य-संस्थाओ के फौलादी नियमो को तोड डाला, वह पुन प्रकट हुई और उन असख्य संस्थाओ मे उसने अपने अस्तित्व को सिद्ध किया जो अब जीवन की सभी दिशाओ तथा मनुष्य-जीवन के लिए आवश्यक सभी वस्तुओ पर अपना अधिकार जमाने की कोशिश कर रही है और जो जीवन की हलचल के कारण नाश होनेवाली सामग्री को पुन पैदा करने के लिए कायम हुई है।

सभ्यता का नवीन पहलू

यहा सम्भवत यह कहा जायगा कि मान लिया पारस्परिक सहयोग विकास का एक कारण हो सकता है, फिर भी मानवी सम्बन्धो के केवल एक ही पहलू पर तो उसका अधिकार है। यह भी माना कि पारस्परिक सहयोग की धारा शक्तिशाली हो सकती है, किन्तु उसके साथ ही दूसरी धारा भी तो है जो व्यक्ति के अधिकारो पर ही जोर देती है। इस धारा का अस्तित्व सदा बना रहा है। यह आर्थिक, राजनैतिक और आध्यात्मिक क्षेत्र मे व्यक्तिगत अथवा जातिगत उच्चता प्राप्त करने के प्रयत्नो मे ही नही प्रकट हुई है, बल्कि उसका एक और काम रहा है जो कही अधिक महत्वपूर्ण होते हुए भी इतना

व्यक्तिगत आग्रह

प्रकट नही है। वह काम यह है कि जाति, ग्राम्य-समुदाय, नगर और राज्य-सस्था के सगठनो ने व्यक्ति पर जो बन्धन लगाये, उनको उस धारा ने बराबर तोडने की चेष्टा की, उसका झुकाव सदा व्यक्ति का स्वतन्त्र अस्तित्व स्थापित करने की ओर रहा। दूसरे शब्दो मे यो कह लीजिये कि व्यक्तिगत आग्रह को एक प्रगतिशील तत्त्व माना गया है।

यह प्रकट है कि जब तक इन दो प्रधान धाराओ का विश्लेपण नही किया जाय, तब तक विकास की कोई आलोचना पूरी नही हो सकती।

सहयोग तत्त्व की उपेक्षा

किन्तु व्यक्ति अथवा व्यक्ति-समूहो के आग्रहो, प्रभुत्व-प्राप्ति के लिए होनेवाली उनकी लडाइयो और उनके फलस्वरूप पैदा होनेवाले सघर्षों का विश्लेषण, वर्णन और गुण-गान पहले ही खूब हो चुका है। वास्तव मे अबतक चारण-भाटो, इतिहासकारो और समाजवेत्ताओ का ध्यान केवल इसी धारा की ओर गया है। इतिहास, जैसा कि इस समय तक लिखा गया है, उसमे प्राय उन विधि-विधानो का ही वर्णन है जिनके जरिये से पोप की सत्ता, सैनिक सत्ता, एकतन्त्री सत्ता और वाद मे धनिक वर्गो के शासन की स्थापना और विस्तार हुआ। असल मे, इन शक्तियो के पारस्परिक सघर्षो का वर्णन ही उस इतिहास का सार है। इस प्रकार हम मानव-इतिहास मे व्यक्ति-प्रधान अग के ज्ञान का अस्तित्व है, यह मान ले सकते है, हालाकि हाल मे वर्णित ढग पर इस विषय के नये सिरे से अध्ययन करने के लिए पूरे कारण मौजूद है। लेकिन दूसरी ओर पारस्परिक सहयोग के तत्त्व की अबतक बिल्कुल उपेक्षा ही की गई। वर्तमान और भूतकाल के लेखको ने उसके अस्तित्व से इन्कार किया है अथवा उसका तिरस्कारपूर्वक मजाक भी उड़ाया है। इसलिए सबसे पहले यह बतलाना आवश्यक प्रतीत हुआ कि पशु-ससार और मानव-समाजो दोनो के विकास मे पारस्परिक सहयोग का यह तत्त्व कितना अधिक हिस्सा लेता है। जब इस बात को पूरी तरह स्वीकार कर लिया जायगा, तभी इन दो तत्त्वो की तुलना कर सकना सम्भव हो सकता है।

दोनो तत्त्वो के अपेक्षाकृत महत्व का ऐसे किसी उपाय से जो कम या ज्यादा आंकिक हो, मोटे तौर पर अन्दाजा लगा सकना भी स्पष्टत असम्भव है।

संघर्ष में भी सहयोग

हम सब जानते है कि सैकडो वर्षो तक पारस्परिक सहयोग के सिद्धान्त के अबाधित अमल से जितनी भलाई हो सकती है, उसकी अपेक्षा अकेले एक युद्ध से ही अधिक तात्कालिक और दूरवर्त्ती बुराई पैदा हो सकती है। किन्तु जब हम देखते है कि पशु-ससार मे प्रगतिशील विकास और पारस्परिक सहयोग का घनिष्ट

सम्वन्ध है और प्राणी-जातियो मे भीतरी सघर्ष का परिणाम उन जातियो की अवनति के रूप मे प्रकट होता है तथा साथ ही जब हम यह भी देखते है कि मानव-सघर्षों और युद्धो मे सफलता उसी हद तक मिलती है जिस हद तक हर दो विरोधी राष्ट्रो, नगरो, दलो अथवा जातियो मे पारस्परिक सहयोग का विकास हो चुका होता है। और यह भी कि विकास-क्रम मे स्वय युद्धो को राष्ट्र, नगर अथवा जाति के अन्दर पारस्परिक सहयोग की उन्नति के लिए अस्त्र बनाया गया है, तो हमे प्रगति के एक तत्त्व की हैसियत से पारस्परिक सहयोग के जबर्दस्त असर का पता लग जाता है। किन्तु हम यह भी देखते है कि पारस्परिक सहयोग के व्यवहार और उसके सतत विकास ने उस सामाजिक जीवन की रचना की जिसमे मानव-प्राणी अपना कलाओ, ज्ञान और बुद्धि का विकास करने मे समर्थ हुआ। इसके अलावा जिस जमाने मे पारस्परिक सहयोग की प्रवृत्ति के आधार पर बनी सस्थाओ का सबसे अधिक विकास हुआ। उसी जमाने मे कला, उद्योग और विज्ञान की सबसे अधिक तरक्की हुई। वास्तव मे मध्यकालिक नगरो और प्राचीन यूनानी नगरो के भीतरी जीवन के अध्ययन से पता चलता है कि मानव-जाति को अपने इतिहास मे जो दो सबसे बडे जमाने प्राप्त हुए, उसका श्रेय पारस्परिक सहयोग के सगठन को ही है। इन जमानो मे से एक प्राचीन यूनानी नगरो का जमाना और दूसरा मध्यकालिक नगरो का जमाना कहलाता है। उस समय के भ्रातृ-सघो और यूनानी जातियो मे पारस्परिक सहयोग का इस प्रकार व्यवहार किया जाता था कि सघ-सिद्धान्त के अनुसार व्यक्ति-समूहो को काम करने की व्यापक स्वतन्त्रता रहती थी। इसके विपरीत जब राज्य-सस्थाओ के युग मे उपर्युक्त सस्थाओ का ह्रास हुआ तो दोनो ही युगो मे शीघ्रता के साथ समाज का पतन हुआ।

वर्तमान शताब्दी मे एकाएक जो औद्योगिक उन्नति हुई है, उसके लिए बहुधा कहा जाता है कि इसका श्रेय व्यक्तिवाद और प्रतिस्पर्द्धा को है,

श्रम

किन्तु वास्तव मे इसके मूल मे कही अधिक गहरे कारण है। पन्द्रहवी शताब्दी मे बडे-बडे आविष्कार हुए। खासकर इस बात का पता चला कि वायु-मण्डल मे भारीपन होता है। ये आविष्कार मध्यकालिक नगरो के सगठन की अधीनता मे ही हुए थे और प्रकृति-विज्ञान मे होनेवाली उन्नति से उनका समर्थन होता था। जब एक बार ये आविष्कार हुए तो यह जरूरी था कि स्टीम-मोटर (वाष्प यन्त्र) का आविष्कार भी होता और वह सब क्रान्ति होती, जिसकी एक नवीन शक्ति पर विजय प्राप्त कर लेने की अवस्था मे कल्पना की जा सकती है। यदि मध्यकालिक नगर अपने आविष्कारो को उस हद तक ले

ज़ाने के लिए जीवित रहे होते तो सम्भव था कि वाष्प-द्वारा हुई क्रान्ति के नैतिक परिणाम कुछ दूसरी ही तरह के होते, परन्तु कला-कौशल और विज्ञान मे तो वही क्रान्ति अवश्य होती। निस्सन्देह यह प्रश्न रह ही जाता है कि स्वतन्त्र नगरो के ह्रास के बाद आम तौर पर जो औद्योगिक अवनति हुई और अठारहवी शताब्दी के प्रथम भाग मे जो विशेष रूप से दृष्टिगोचर होती थी, उसने वाष्प-इजिन के आविर्भाव को और उसके बाद कला-कौशल मे होनेवाली क्रान्ति को बहुत हद तक रोका अथवा नही। जब हम बारहवी शताब्दी से पन्द्रहवी शताब्दी तक होनेवाली बुनने, धातुओ के उपयोग करने, भवन-निर्माण करने और जहाजी विद्या मे औद्योगिक उन्नति की आश्चर्यजनक तेज रफ्तार पर विचार करते हे और उन वैज्ञानिक आविष्कारो के विषय मे चिन्तन करते है, जो पन्द्रहवी शताब्दी के अन्त मे औद्योगिक उन्नति के कारण हुए, तो हमे अपने मन से यह प्रश्न करना चाहिए कि मध्यकालिक सभ्यता के ह्रास के बाद यूरोप के उद्योग-धन्धो मे जो आम अवनति हुई उसकी वजह से तात्कालिक सफलताओ से पूरा-पूरा लाभ उठाने मे मानव-जाति को देर हुई अथवा नही ? निश्चय ही चतुर कारीगरो का लोप, बडे-बडे नगरो की वर्बादी और उनके पारस्परिक व्यवहार का स्थगित हो जाना औद्योगिक क्रान्ति मे सहायता नही पहुचा सकता था। हमे इस बात का खूब पता है कि जेम्स वाट को बीस या बीस से अधिक वर्ष तक इसलिए इधर-उधर भटकना पडा कि उसने जो आविष्कार किया था, उसको कार्य-रूप मे परिणत किया जा सके। जेम्स वाट को जो चीज मध्यकालिक फ्लोरेंस अथवा ब्रुगेस नगरो मे आसानी से मिल जाती, वह अठारहवी शताब्दी मे नही मिली। कहने का मतलब यह कि उस समय ऐसे कारीगर नही थे, जो उसकी योजना के अनुसार कला-युक्त और बिलकुल ठीक धातुओ के यन्त्र बना देते।

अत. वर्तमान शताब्दी की औद्योगिक उन्नति का श्रेय समष्टि के विरुद्ध होनेवाले व्यक्ति के सघर्ष को देना ठीक उस आदमी की तरह तर्क करना है, जो वर्षा होने के असली कारणो को तो नही जानता और कहता है मिट्टी की मूर्ति के आगे मैने जो बलिदान चढाया है, उसके फलस्वरूप वर्षा होती है। बात यह है कि प्रकृति को वश मे करने के हर दूसरे प्रयत्न की भाति औद्योगिक उन्नति के लिए भी पारस्परिक सघर्ष की अपेक्षा पारस्परिक सहयोग और घनिष्ट सम्पर्क कही अधिक लाभदायक होता है। इस कथन की सत्यता का पता मानव-जाति के अब तक के इतिहास से भलीभाति लग जाता है।

परन्तु यदि पारस्परिक सहयोग के सिद्धान्त का पूरे अंशो मे सर्वोपरि

महत्व कही दिखाई देता है तो वह विशेषत नैतिक क्षेत्र ही है। यह स्वय-

नैतिक क्षेत्र मे

सिद्ध है कि हमारे नैतिक विचारों का वास्तविक आधार-स्तम्भ पारस्परिक सहयोग है। पारस्परिक सहयोग की भावना या प्रवृत्ति के मूल उद्गम के सम्बन्ध मे लोगो की चाहे कैसी भी राय क्यो न हो, चाहे प्राकृतिक कारणो को उसका श्रेय दिया जाय, हमे उस भावना का प्राणी-ससार की निरन्तर अवस्थाओ तक मे अस्तित्व दिखाई देता है। उन अवस्थाओ से लगाकर इस समय तक की मानव-विकास की सभी सीढियो मे विरोधी कारणो के काम करते रहने पर भी इस भावना के अवाधित विकास को हम देख सकते है। समय-समय पर जिन नवीन धर्मो की उत्पत्ति हुई, उन धर्मों ने भी केवल पारस्परिक सहयोग के उसी सिद्धान्त का फिर से समर्थन किया है। इन धर्मो की उत्पत्ति सदा ऐसे समय मे हुई जब कि रोम-साम्राज्य का सूर्य अस्त हो रहा था अथवा पूर्वीय धर्म-सत्ताओ और एकतन्त्री शासन पद्धतियो की अधीनता मे पारस्परिक सहयोग के सिद्धान्त का ह्रास हो रहा था। उन धर्मों के सबसे पहले अनुयायी समाज के विनीत, निम्न और पददलित हिस्सो मे पैदा हुए, जहा कि पारस्परिक सहयोग का सिद्धान्त दैनिक व्यवहार का आवश्यक आधार-स्तम्भ होता है। अत्यन्त प्राचीन बौद्ध और ईसाई समुदायो तथा मोवियन भ्रातृ-सघो आदि मे सगठन के जो नये प्रकार जारी हुए, उन्होने प्राचीन जातीय जीवन मे प्रचलित पारस्परिक सहयोग के सर्वोत्तम स्वरूप को अपनाया।

साथ ही, हर वार जब कभी इस प्राचीन सिद्धान्त की ओर लौट जाने के प्रयत्न हुए, तभी उसके मूलभूत विचार को व्यापक बनाया गया। कुटुम्ब

नीति का आधार

से जाति, जाति-सघो, राष्ट्रो और अन्त मे, आदर्श के तौर पर ही सही, समस्त मानव-जाति तक पर यह सिद्धान्त लागू किया जाने लगा। साथ ही उसको सुसस्कृत भी बनाया गया। प्रारम्भिक बौद्ध और ईसाई मजहब मे, कुछ मुसलमान धर्म-गुरुओ के लेखो मे प्राचीन सुधार-आन्दोलनो और खासकर अठारहवी शताब्दी और वर्तमान समय के नैतिक और दार्शनिक आन्दोलनो मे प्रति-शोध, या भलाई के बदले भलाई और बुराई के बदले बुराई के विचार को बिलकुल त्याग देने के लिए अधिकाधिक जोर के साथ कहा गया है। बुरे कर्मो का बदला न लिया जाय और अपने पडोसियो से जितना मिलने की आशा हो, उससे भी अधिक स्वेच्छापूर्वक पडोसियो को देने की प्रवृत्ति रहे—इस तरह के उच्चतर विचार को नीति का सच्चा सिद्धान्त घोषित किया जा रहा है। यह सिद्धान्त केवल समानता अथवा न्याय के सिद्धान्त

की अपेक्षा कही उच्च और कल्याणकारी है। यह अपील की जाती है कि मनुष्य अपने व्यवहार मे प्रेम का ही सहारा न ले, जो कि सदा व्यक्तियो तक ही सीमित रहता है, बल्कि वह हरेक मानव-प्राणी को अपने ही समान समझे और तदनुसार आचरण करे। इस प्रकार पारस्परिक सहयोग के व्यवहार मे, जिसका अस्तित्व विकास के प्राचीनतम काल मे भी मिलता है, हमे नैतिक सिद्धान्तो का निश्चयात्मक और असन्दिग्ध मूल मिलता है। हम यह दावे के साथ कह सकते है कि मनुष्य की नैतिक उन्नति मे पारस्परिक सघर्ष ने नही, बल्कि पारस्परिक सहयोग ने प्रमुख हिस्सा लिया है। इस समय भी हमे उसके व्यापक विस्तार मे ही मानव-जाति के और भी उच्चतर विकास की सर्वोत्तम गारटी दिखाई देती है।

	१'००	रामतीर्थ-संदेश (३ भाग)
भागवत-धर्म	५ ५०	रोटी का सवाल (क्रोपाटकिन)
मानवता के झरने	१'५०	नवयुवको से दो बाते ,,
बापू	२ ००	पुरुषार्थ
रूप और स्वरूप	० ७५	काश्मीर पर हमला
डायरी के पन्ने	१ ००	शिष्टाचार
ध्रुवोपाख्यान	०'३०	तट के बन्धन
स्त्री और पुरुष (टॉल्स्टाय)	१ ००	नवीन यात्रा
मेरी मुक्ति की कहानी ,,	१ ५०	तूफान और ज्योति
प्रेम मे भगवान ,,	२'५०	भारतीय सस्कृति
जीवन-साधना ,,	१ २५	आधुनिक भारत
कलवार की करतूत ,,	०'३५	फलो की खेती
हमारे जमाने की गुलामी ,,	१ ००	मैं तदुरुस्त हू या बीमार ?
बुराई कैसे मिटे ? ,,	१ ००	गाधीजी की छत्रछाया मे
बालको का विवेक ,,	० ५०	भागवत-कथा
हम करे क्या ? ,,	४ ००	जय अमरनाथ
धर्म और सदाचार ,,	१ २५	हमारी लोक-कथाएं
अधेरे मे उजाला ,,	१ ५०	सस्कृत-साहित्य-सौरभ
ईसा की सिखावन ,,	१ ००	(३५ पुस्तके) प्रत्येक
सामाजिक कुरीतिया	२ ५०	समाज-विकास-माला
कल्पवृक्ष	२'५०	(१५१ पुस्तके) ,,त्ये
साहित्य और जीवन	२ ००	कृषि-ज्ञान-कोष
कब्ज	१ ००	प्रकाश की बाते
हिमालय की गोद मे	२ ००	ध्वनि की लहरे
कहावतो की कहानिया	२ २५	गरमी की कहानी
जीवन-सदेश	१ २५	धरती और आकाश
अशोक के फूल	३ ००	समुद्र के जीव-जतु
काग्रेस का इतिहास (सक्षिप्त)	६ ००	रूस मे छियालीस दिन
सप्तदशी	२ ००	मैं इनका ऋणी हू
रीढ की हड्डी	१'५०	सुभाषित-सप्तशती
अमिट रेखाए	३'५०	शारदीया
तामिल-वेद	१ ५०	आसू और मुस्कान
हमारे गाव की कहानी	१ ५०	अमृत की बूदे
खादी द्वारा ग्राम-विकास	० ७५	प्राकृतिक जीवन की ओर
साग-भाजी की खेती	३ ५०	कोई शिकायत नही
पशुओ का इलाज	० ७५	